



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



पारख बिन परचै नहीं, बिन सत्संग न जान।

दुबिधा तजि निर्भय रहे, सोई सन्त सुजान ॥ बीजक पाठफल ॥

वर्ष 48]

इलाहाबाद, आश्विन, वि. सं. 2075, अक्टूबर 2018, सत्कबीराब्द 620

[अंक 3

तेरे घट में राम तू काहे भटके ॥ टेक ॥

जैसे अगिन बसत पथरा में, चमकत नहीं बिनु पटके ॥ 1 ॥

जैसे माखन रहत दूध में, निकसत नहीं बिनु झटके ॥ 2 ॥

जैसे मधुर रस बसत ऊख में, निकसत नहीं बिनु कटके ॥ 3 ॥

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, हरि न मिले बिनु अटके ॥ 4 ॥

x

x

x

साधो एक रूप सब माहीं।

अपने मनहि बिचारि के देखो, और दूसरो नाहीं ॥ टेक ॥

एकै तुचा रुधिर पुनि एकै, बिप्र सूद्र के माहीं।

कहीं नारी कहिं नर होइ बोलै, गैब पुरुष वह आहीं ॥ 1 ॥

आपै गुरु होय मंत्र देत हैं, सिष होय सबै सुनाहीं।

जो जस गहै लहै तस मारग, तिन के सतगुरु आहीं ॥ 2 ॥

सब्द पुकार सत्त मैं भाषौं, अंतर राखौं नाहीं।

कहैं कबीर ज्ञान जेहि निर्मल, बिरले ताहि लखाहीं ॥ 3 ॥

पारख प्रकाश

पारख क्या है?

पारख का शुद्ध रूप है 'परख' और इसका अर्थ है—गुण-दोष निर्णय के लिए किसी वस्तु को देखने की क्रिया, परीक्षा, किसी के गुण-दोष की जांच-पड़ताल करने की शक्ति, सत्य-असत्य के भेद को समझने की शक्ति, जड़-चेतन के भिन्नत्व का विवेक। विवेक का अर्थ सार-असार, सत्य-असत्य को अलग-अलग ठीक से समझ लेना मात्र नहीं है, किन्तु दोनों को सही ढंग से समझकर असार-असत्य को छोड़कर सार-सत्य को ग्रहण करना है।

'पारख' और 'विवेक' अलग-अलग नहीं हैं, किन्तु एक ही है। पारख ही विवेक है और विवेक पारख ही है। इसी प्रकार पारख और ज्ञान भी एक ही है। पारख, विवेक एवं ज्ञान का अर्थ है किसी भी बात को, चाहे वह कहीं किसी धर्मग्रंथ में लिखी हो और चाहे उसे किसी पीर-पैगंबर, औलिया, संत, महात्मा, धर्मगुरु ने कहा हो, तभी स्वीकार करना जब वह प्रकृति की कारण-कार्य-व्यवस्था, विश्व के शाश्वत नियम एवं तत्त्वों के गुण-धर्मों के अनुकूल हो। पारख एवं विवेक किसी बात को आंख मूंदकर मानने की राय नहीं देता, किन्तु तर्क की कसौटी पर कसकर मानने की राय देता है। पारख-विवेक का अर्थ है निष्पक्षतापूर्वक न्याय। इसमें न किसी बात को आंख मूंदकर मानना है और न आंख मूंदकर छोड़ना। पारख-विवेक का अर्थ है सत्य के प्रति दृढ़ आस्था, एकांत निष्ठा।

पारख-विवेक के लिए हंस का उदाहरण दिया जाता है। हंस में नीर-क्षीर विवेक की स्वाभाविक शक्ति होती है। यह उसका मौलिक गुण है। इसी प्रकार पारख-विवेक जीव मात्र का मौलिक गुण है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए सद्गुरु कबीर ने मनुष्य-जीव के लिए अनेक बार हंस शब्द का प्रयोग किया है

और कहा है—हंसा तू तो सबल था, हंसा तू सुवर्ण वर्ण, हंसा सरवर तजि चले, हंसा हो चित चेतु सकेरा, हौं जाना कुल हंस हो, आदि।

बीजक पाठफल में एक साखी है—“नीर क्षीर निर्णय करे, हंस लक्ष सहिदान। दया रूप थिर पद रहे, सो पारख पहिचान।” अर्थात् नीर-क्षीर का भिन्न विवेक कर नीर को छोड़कर क्षीर को ग्रहण कर लेना हंस की पहचान है। इसी प्रकार सार-असार, सत्य-असत्य का विवेक कर असार-असत्य को छोड़कर सार-सत्य को ग्रहण करना मनुष्य का मनुष्यत्व, हंसत्व है। आत्म-अनात्म, जड़-चेतन के भिन्नत्व-भेद को तथ्यतः समझकर अनात्म-जड़ की सारी आसक्तियों को छोड़कर आत्म-चेतन स्वरूप में स्थित हो जाना मनुष्य का मनुष्यत्व एवं हंसत्व है। श्री निर्मल साहेब के शब्दों में कहें तो—सबको परख डार दे तू विजाती। जहाँ लो तुम्हारे नजर में दिखाती। अर्थात् इंद्रिय-मन के द्वारा जो कुछ तुम्हें जानने-समझने में आता है, जो कुछ प्रतीतमान है सब कुछ विजाति है। वह तुम्हारा अपना आपा, स्वस्वरूप नहीं हो सकता, अतः उन सबको परखकर छोड़ दो। यही पारख है, हंसत्व है।

उक्त साखी का सरल भावार्थ है—नीर-क्षीर निर्णय करना, दया रूप होना और थिर पद में रहना, पारख की पहचान है। इसमें पारख के तीन पक्षों का निरूपण है—नीर-क्षीर निर्णय करना सैद्धान्तिक या दार्शनिक पक्ष है, दया रूप होना व्यावहारिक पक्ष है और थिर पद रहना आध्यात्मिक पक्ष है।

यहां हम तीनों पक्षों को समझने का प्रयास करेंगे—

1. नीर-क्षीर निर्णय करना—सद्गुरु कबीर ने बीजक में एक साखी कही है—नग पषाण जग सकल है, पारख बिरला कोय। नग ते उत्तम पारखी, जग में बिरला होय ॥ बीजक, साखी 290 ॥ अर्थात् संसार में सर्वत्र रत्न और पत्थर, गुण और दोष, सार और असार हैं, परन्तु इनकी परख करने वाले बिरले हैं। नग-रत्न-गुणों से भी उत्तम उनका पारखी होता है, जो नग-गुण को पहचान कर उसका ग्रहण-उपयोग करता है।

भौतिक क्षेत्र में तो गुण-दोष, सार-असार, अच्छे-बुरे की लोग बड़ी बारीकी से पहचान, जांच-पड़ताल करते हैं। कोई गलत वस्तु लेना नहीं चाहता, सब अच्छी वस्तु ही लेना चाहते हैं, परंतु धर्म के क्षेत्र में स्थिति इसके सर्वथा विपरीत दिखाई देती है। यहां पोथी-पुराण, धर्मग्रंथ, महापुरुष, अवतार, पैगंबर, ईश्वर, परंपरा का नाम लेकर सड़ी-गली बातों, हानिकारी रीति-रिवाजों को बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ स्वीकार कर लेते हैं। उन पर विचार नहीं करना चाहते। विचार करने को धर्मद्रोह, ईश्वरद्रोह एवं नास्तिकता समझते हैं। यदि समझ में आ भी जाती है कि यह बात गलत है तो उसे खुले रूप में नकारने-अस्वीकार करने की हिम्मत नहीं करते। इसीलिए आज भी तमाम ऐसी बातें धर्म और ईश्वर के नाम पर मानी और मनवायी जा रही हैं जो पूर्णतः विवेक एवं विज्ञान विरुद्ध हैं। पारखी व्यक्ति ऐसा नहीं करता। वह न तो किसी बात को आंख मूंदकर मानता है और न आंख मूंदकर छोड़ता है। उसके लिए धर्मग्रंथ, महापुरुष, अवतार, पैगंबर, ईश्वर प्रमाण नहीं होते, किन्तु पारख-विवेक प्रमाण होता है। वह वही मानता है जो पारख-विवेक की कसौटी में खरा उतरता है। वह सबसे निष्पक्ष एवं निरपेक्ष होता है।

कुछ लोग जो अपने को बड़े स्पष्टवादी एवं सत्यवादी मानते हैं किसी की भावनाओं की परवाह किये बिना देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म, मूर्ति पूजा आदि का कटु खण्डन करने को ही पारख समझते हैं। ऐसा कटु खण्डन जिससे किसी का दिल दुखे पारख नहीं है। ऐसे लोगों के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—हते पराई आतमा, जीभ बांधि तरवार।

सांच और झूठ के, सही और गलत के निर्णय की आवश्यकता है, बिना निर्णय के लोग समझेंगे कैसे कि सांच क्या है और झूठ क्या है तथा सही क्या है और गलत क्या है, परंतु इसके लिए विनम्र और मीठे शब्दों का प्रयोग होना चाहिए न कि कठोर और कटु शब्दों

का। कटु-कठोर खण्डन करने से लोग सत्य निर्णय को भी स्वीकार नहीं कर पाते।

कभी-कभी कोई अन्य साधन न रहने पर मजबूरीवश किसी पेड़ के फल को तोड़ने-गिराने के लिए उसे झकझोरना भी पड़ता है, परंतु हर समय झकझोरना नहीं जाता और झकझोरते समय यह ध्यान तो रखना ही पड़ता है कि पेड़ अपनी जड़ से उखड़ने न पाये। इसी प्रकार कभी-कभी कोई बात किसी के सामने झकझोरकर भी कहना पड़ता है, परन्तु वह झकझोरना ऐसा न हो कि उसकी जड़ ही उखड़ जाये। सब तरफ से उसकी आस्था-श्रद्धा ही खत्म हो जाये।

किसी को उसकी भ्रम-मान्यताओं की परख न करवायी जाये तो उसे यह समझ में ही कैसे आयेगी कि जो मैं मान रहा हूं, वह गलत है। इसलिए सत्यासत्य निर्णय तो करना ही पड़ेगा। इसी के लिए श्री रामरहस साहेब ने कहा है—परख प्रखावन जीवन केरा। यह व्यवहार यथार्थ निबेरा॥ पंचग्रंथी, गुरुबोध॥ अर्थात् स्वयं परखना एवं दूसरों को परखाते रहना व्यवहार का एक आवश्यक अंग है। परंतु यह प्रेमपूर्वक होना चाहिए। इसमें किसी प्रकार की कटुता नहीं आना चाहिए। हम चाहते तो यही हैं कि लोगों को सत्य-तत्त्व, यथार्थ धर्म का ज्ञान हो और वे भ्रम-भुलैया को छोड़कर सही मार्ग में लगे, परन्तु यदि हमारे कटु खण्डन से उनका दिल दुख जायेगा तो वे हमारी सही बात को भी सुनना नहीं चाहेंगे। तब उन्हें सत्य तत्त्व का बोध कैसे होगा।

जड़-चेतन के भिन्नत्व का स्पष्ट पूर्णतः बोध, प्रकृति की कारण-कार्य-व्यवस्था, विश्व के शाश्वत नियम एवं तत्त्वों के गुण-धर्मों का निभ्रान्त बोध पारख का सैद्धांतिक एवं दार्शनिक पक्ष है। जड़-चेतन के गुण-धर्मों एवं विश्व के शाश्वत नियमों को समझ लेने पर अंधविश्वास, चमत्कर, दैवीय कल्पना, पाप काटने के सस्ते नुस्खे आदि की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। सारी भूल-भ्रान्ति मिट जाती है। जैसा कि सद्गुरु कबीर का कथन है—

भूल मिटै गुरु मिले पारखी, पारख देहि लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई॥

(बीजक, शब्द 115)

जिस प्रकार जड़-चेतन, आत्म-अनात्म एवं सांच-झूठ की परख आवश्यक है उसी प्रकार अपने गुण-दोषों, मन की स्ववशता-परवशता की परख करते रहना भी आवश्यक है। बाहर जिस प्रकार सर्वत्र झूठ का बाजार गरम है, झूठ का बोलबाला है उसी प्रकार हर आदमी के अंदर झूठ का बोलबाला है, क्योंकि झूठों का सरदार मन हर आदमी के संग-साथ निरंतर लगा हुआ है। यह मन ही तो है जो सुखद को दुखद एवं दुखद को सुखद, अपने को पराया तथा पराया को अपना बताकर हर समय जीव को बाहर भटकाता तथा नचाता रहता है। सद्गुरु कबीर सावधान करते हुए कहते हैं—

झूठेहि जनि पतियाउ हो, सुनु संत सुजाना।
तेरे घट ही में ठग पूर है, मति खोवहु अपना॥

(बीजक, शब्द 113)

हे ज्ञानी संतो! मेरी बातें सुनो, झूठी बातों पर विश्वास मत करना। चाहे वह झूठी बात धर्म के नाम पर कही गयी हो और चाहे ईश्वर-परमात्मा के नाम पर। सावधान रहना, सबसे बड़ा ठग, झूठों का सरदार मन तुम्हारे घट-हृदय में ही बैठा हुआ है, उसके साथ मिलकर अपने आत्मगौरव को, होशहवास को, विवेक को खो मत देना। धरती से आकाश तक इस झूठे मन का ही विस्तार-साम्राज्य है। इसने दसों दिशाओं में अपना फंदा फैला रखा है और जीव को सब तरफ से घेर लिया है।

सत्य का बोध एवं उसमें स्थिति के लिए निरंतर अपने मन की परख करते रहना होगा। मेरे दोष कितने घटे हैं या नहीं घटे हैं, नहीं घट रहे हैं तो क्यों, कहां चूक हो रही है, सद्गुण कितने बढ़े, नहीं बढ़ रहे हैं तो क्यों, कहां चूक हो रही है, यदि इनकी परख नहीं की गयी तो दोषों को छोड़कर सद्गुणों की तरफ कभी प्रगति नहीं हो सकेगी। मन का बाह्य प्राणी-पदार्थों के

प्रति आकर्षण घटा है या बढ़ा है, यदि घटा है तो स्ववशता का काम हो रहा है और यदि नहीं घटा है बल्कि बढ़ गया है तो परवशता का काम हो रहा है और परवशता ही में तो सारा दुख है।

यदि एकांत में बैठकर अपने गुण-दोषों की तथा मन की स्ववशता-परवशता की परख नहीं करते हैं और दोष-परवशता को घटाने-मिताने तथा गुण-स्ववशता को बढ़ाने के लिए सावधानीपूर्वक प्रयत्न नहीं करते हैं तो समझना होगा कि हमारे परख-पारख में अभी बहुत कमी है, क्योंकि पारख की पहचान है गुण-दोषों की परख करके दोषों को त्यागकर गुणों को ग्रहण करना, निरंतर अपनी कमियों-त्रुटियों को मिताने-दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहना।

2. दया रूप होना—“दुखिया सबहीं जीव हैं, मन माया के चक्र” (श्री विशाल साहेब) मन-माया के चक्कर में पड़कर सभी जीव दुखी हैं और दीन-लाचार बने हुए हैं, उनके दुखों को देखकर द्रवित हो जाना और यथासंभव सेवा-सहायता करते हुए दुखों को दूर करने का प्रयास करना दया है।

यदि किसी के दुख को देखकर मन द्रवित नहीं होता और समर्थ-सक्षम होते हुए भी दुख दूर करने का प्रयास नहीं किया जाता तो समझना चाहिए अभी हमारा पारख करना अधूरा है। आखिर मनुष्यता की मांग भी तो यही है। फिर यहां पराया कौन है। आत्मिक दृष्टि से सभी हमारे सजातीय बन्धु हैं। श्री रामरहस साहेब कहते हैं—निज स्वरूप लखि दया युत, दीन जानि अपनाव। अर्थात् सभी जीवों को अपना स्वरूप-सजातीय तथा मनःकल्पना एवं विषयासक्ति वश दीन समझकर उनके साथ दया का व्यवहार करो। सद्गुरु कबीर तो प्राणिमात्र को प्राण के समान प्रिय मानने की राय देते हैं और कहते हैं कि दूसरों को चोट पहुंचाने की क्रिया न करो—घाव काहि पर घालो, जित देखो तित प्राण हमारो।

अपने शरीर के किसी अंग में चोट पहुंचाने से अंत में अपने को ही कष्ट होता है इसी प्रकार किसी को भी

चोट पहुंचाने पर वह चोट अंत में अपने को ही मिलेगी। इसके विपरीत किसी पर दया-करुणा करना मानो स्वयं पर ही दया-करुणा करना, स्वयं के प्रति उपकार करना है, क्योंकि दूसरों के साथ जितना दया-करुणा का व्यवहार करते जायेंगे उतने ही मन की क्रूरता-कठोरता दूर होती जायेगी और चित्त-मल दूर होकर चित्त निर्मल होता जायेगा और यह अपने साथ ही उपकार करना हुआ।

भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, नंगे को कपड़ा तथा रोगी को दवा देना प्रत्यक्षतः दया है और इसकी आवश्यकता सब समय रही है तथा रहेगी। परंतु दया का वास्तविक स्वरूप इससे और अधिक गहरा है और वह है भूले-भटके हुआं को सही मार्ग बता देना तथा कुमार्ग में जाते हुए को सुमार्ग में ले आना। क्योंकि एक भटके हुए कुकर्मि व्यक्ति को समझा-बुझाकर, सदबोध देकर सुमार्गी-सत्कर्मि बना देने से अनेक लोगों की रक्षा हो जाती है।

पारख का व्यावहारिक रूप है दया रूप होना। सबके प्रति दया-करुणा का भाव रखते हुए यथासंभव दूसरों के दुखों को दूर करने का प्रयास करना। दूसरों के प्रति जितना दया-करुणा का भाव जगता जायेगा उतना ही मन सरल-कोमल-विनम्र तथा शुद्ध होता जायेगा और सरल-कोमल शुद्ध चित्त ही अंतर्मुख होकर आत्मलीन होगा।

3. थिर पद रहे—किसी व्यक्ति को रात-दिन चलते रहना और काम करते रहना पड़े, स्थिर-शांत होने के लिए जरा भी अवकाश न मिले तो वह कितना दुखी-पीड़ित होगा, सहज समझा जा सकता है। जैसे बाहर भटकते रहना दुख का कारण है वैसे मन का हर समय भटकते रहना, चंचल बने रहना, एक क्षण के लिए स्थिर-शांत न होना, दुख का कारण है। मन का भटकाव छोड़कर स्थिर-शांत होना सुख-शांति का साधन है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—होय बिहिस्त जो चित्त न डोलावै। खसमहि छाड़ि दोजख को धावै॥ बीजक, रमैनी 5 ॥ अर्थात् यदि मनुष्य अपने चित्त को

चंचल न करे तो उसे आज ही बिहिस्त-मोक्ष की प्राप्ति हो जाये। परंतु मनुष्य तो स्थिरता का आधार, सारे ज्ञान-विज्ञान का आधार, मालिक, स्व स्वरूप, निज चेतन के बोध को छोड़कर विषय-कल्पना रूपी नरक की तरफ दौड़ रहा है, जहां कहीं स्थिरता-ठहराव है ही नहीं।

हर मौलिक पदार्थ की स्थिति उसके अपने स्वरूप में ही होती है, पर-रूप में नहीं—जहाँ का पद तहाँ समाई॥ बीजक, शब्द 42 ॥ इस जीव को किसी में मिलकर स्थिर नहीं होना है किन्तु सबसे विमुक्त होकर अपने आप में ही रहना है। मिलना-मिलाना विकारी-विनश्वर पदार्थों में होता है, निर्विकार-अनश्वर में नहीं। जीव निर्विकार-अनश्वर है, तब वह किसी में मिलेगा कैसे!

‘थिर पद’ अपना आपा, स्वस्वरूप चेतन ही है। जिस परख शक्ति से जीव सबको परखता है, वह उसका निज स्वरूप ही है। श्री पूरण साहेब कहते हैं—जाते सकलो परखिया, सो पारख निजरूप। तहाँ होय रहु थीर तू, नहिं झाँई भ्रम कूप॥ त्रिज्या, अंत स्तुति॥ अर्थात् जिस ज्ञान शक्ति से तू सबको परखता है वही तेरा निजस्वरूप है। तू मन की कल्पना रूपी परिछाँई, जो केवल भ्रम का कुआं है, उसको छोड़कर उस अपने पारख स्वरूप ही स्थित रह। वे और भी कहते हैं—पारख ऊपर थिर होय रहना, सकल परखना ना कछु गहना॥ निर्णयसार, अंत में॥ अर्थात् हे जीव! तुम अपने ज्ञानस्वरूप पारख में स्थित रहना। अपने से पृथक जो कुछ विषय-कल्पना रूपी दृश्य है, उसका केवल द्रष्टा रहना। उसको ग्रहण नहीं करना, अपने में आरोपित न करना।

सब कुछ को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाना पारख का आध्यात्मिक पक्ष है। वस्तुतः पारख और जीव अलग-अलग नहीं हैं, एक ही है। जैसे जल और शीतलता, आग और उष्णता अलग-अलग नहीं, किन्तु एक ही है वैसे पारख और पारखी (जीव, चेतन) एक ही है। अलग कहना हो तो श्री काशी साहेब के शब्दों में कहा जा सकता है—“पारख गुण चेतन गुणी,

एक स्वरूप न आन ॥” अर्थात् पारख (ज्ञान) गुण है और चेतन गुणी (द्रव्य) है। दोनों एक स्वरूप है, भिन्न-भिन्न नहीं। गुण गुणी से अलग नहीं रह सकता, दोनों का समवाय संबंध रहता है। इसीलिए कहा गया—“पारख पारखी एक है, भिन्न भाव नहीं दोग।” तथा—“पारख माँहें पारखी वासा।” सबकी आशा छोड़कर अपने निजस्वरूप पारख में स्थित हो जाना ही थिर पद रहना है।

‘थिरपद’ का व्यावहारिक पक्ष है—एकांत में स्थिर आसन से बैठकर मनोद्रष्टा का अभ्यास करना। मन में जो संकल्प, स्मरण, विचार उठें उनमें न मिलकर उन्हें देख-देखकर छोड़ते जाना। वैराग्यभावपूर्वक निरंतर के अभ्यास से ऐसी दशा आती है जब मन में कोई विचार, चिंतन, संकल्प नहीं रह जाता, मन पूर्ण निर्विचार स्थिति में पहुंच जाता है, जिसके लिए सांख्य दर्शन में कहा है—ध्यानं निर्विषयं मनः। इसी को सद्गुरु कबीर ने सहज ध्यान तथा सहज समाधि कहा है।

इसकी भी दो स्थिति होती है—एक व्यवहार काल की और दूसरी अभ्यास काल की। व्यवहार काल में जीवन-निर्वाह एवं सेवा का काम करते हुए मन का निर्विकार-निर्मोह-निष्काम रहना और अभ्यास काल में मन का निर्विचार हो जाना। व्यवहार में मन का निर्विकार रहना एवं अभ्यास में निर्विचार हो जाना—यही थिर पद रहना है। इस दशा में मन का सारा क्लेश समाप्त हो जाता है फिर तो ‘सब सुख तेरे पास’ तथा ‘सो जन सदा अनंदा’ एवं ‘बसे आनंद अटारी’ की दशा आ जाती है।

इस प्रकार सत्यासत्य की परखकर असत्य को छोड़कर सत्य को ग्रहण करना, प्राणिमात्र के लिए दया रूप होना, सब कुछ का मोह छोड़कर मन की सारी चंचलता छोड़कर आत्मलीन, थिरपद रहना—यही वास्तविक पारख है।

—धर्मेन्द्र दास

मत सोचें लोग क्या सोचेंगे?

लेखिका—बैरी डेवनपोर्ट

मैं ऑफिस में बैठी थी। रो-रोकर बुरा हाल था। मुझे अभी-अभी एक स्थानीय अटलांटा प्रकाशन के संपादक के सहायक की ओर से एक पत्र भेजा गया था। वास्तव में यह पत्र नहीं था, बल्कि उस रिपोर्ट की कॉपी थी, जो मैंने अपने एक क्लाइंट के बारे में स्टोरी के संदर्भ में तैयार थी। उन्होंने मेरी बनायी रिपोर्ट को पूरी तरह से रंग दिया था। टिप्पणी में यह भी कहा कि यह संपादक के पास भेजने लायक नहीं था।

मैं दस साल से पब्लिसिस्ट का काम कर रही थी, न्यूयॉर्क में रहते हुए एक बड़े रिटेलर और एक पब्लिक रिलेशन फर्म के लिए काम कर चुकी थी। अब मैं अटलांटा में रह रही थी। मेरी अपनी पीआर कंसल्टेंसी थी। मैं नौसिखिया नहीं थी, लेकिन इस चिट्ठी ने मेरे

अब तक के सारे किये-धरे को नष्ट कर दिया था। संपादक के उस सहायक के अंधाधुंध फैसले ने पहले की मेरी सारी सफलताओं को धूल-धूसरित कर दिया था। उसकी आलोचना इतनी चुभने वाली थी कि उसने मेरे आत्मविश्वास को हिला दिया। एक क्षण में एक आदमी, जिसे मैं जानती भी नहीं थी, के विचारों ने मेरे वर्षों के कठिन परिश्रम की धज्जियां उड़ा दीं। या यूँ कहें, जो व्यक्ति मुझे ढंग से जानता भी नहीं था, मैं उसकी सोच की ज्यादा ही परवाह कर रही थी।

बेशक आखिरकार मैं इससे उबर गई, लेकिन यह घटना उन कई घटनाओं में से एक थी, जहां दूसरों की राय मेरे लिए दुख, चिंता या अपराधबोध का कारण बनी। हाल के वर्षों में मैंने ऐसी बातों को दरकिनार

करना सीख लिया है। हालांकि मैं अभी भी लोगों की राय का आदर करती हूँ, लेकिन वे मेरे बारे में क्या सोचते हैं, इसकी कतई परवाह नहीं करती। क्या आप भी उन लोगों में से हैं, जो दूसरों की राय से परेशान हो जाते हैं? अगर हां, तो कुछ बातों पर अमल शुरू करें—

फैसला आपको करना है

इस दुनिया में सिर्फ एक व्यक्ति है, जिसकी राय आपके लिए मायने रखती है और वह है—आप। यह आपकी जिंदगी है और अपनी नियति के इंचार्ज आप हैं। दूसरे क्या सोचते हैं, अगर इससे अपसेट या नियंत्रित होंगे तो यह स्वयं के सशक्तिकरण की राह में रोड़ा बन जायेगा।

अस्वीकृति के डर से निकलें

जब हम इस बात की बहुत ज्यादा परवाह करते हैं कि लोग क्या सोचेंगे, तो सामान्यतः यह हमारे अस्वीकृति के डर या ठुकरा दिये जाने के डर को दर्शाता है। अगर हम उन्हें अपसेट या निराश करेंगे तो वे हमें छोड़ देंगे, प्यार नहीं करेंगे। कष्ट के समय में हम अकेले हो सकते हैं। और यह उतना ही अजीब है, जितना सुनने में लगता है। मानो अगर लोगों ने छोड़ दिया तो कैसे जिंदा रहा जा सकता है। जो सच मैंने अपने अनुभव से जाना है, वह ये है कि जब आप इस बात की ज्यादा परवाह करना छोड़ देते हैं कि लोग क्या सोचेंगे, तो वे आपका पहले से ज्यादा सम्मान करते हैं।

खुद को थोड़ा समय दें

दूसरों की सोच की परवाह आप करना छोड़ दें, इसमें थोड़ा समय लगेगा। लेकिन अब आप जान चुके हैं कि इस तरह से जीने की जरूरत नहीं है। यह बात खुद को बार-बार याद दिलाते रहें कि लोगों का ध्यान आपकी बजाय खुद पर ज्यादा होता है।

गलतियों को गले लगाएं

जब हम असफल हो जाते हैं या सार्वजनिक भूल करते हैं, हमें लगता है कि सारी दुनिया की निगाहें हमें भेद रही हैं। अब सबको मेरी मूर्खता का पता चल गया। क्या असफलता को लेकर आप नया नजरिया

अपना सकते हैं? सबसे पहले यह समझिए कि हर कोई असफल होता है। यह एक सार्वभौम अनुभव है। अगर आप इसे समझ जाते हैं तो यह देख सकते हैं कि असफलता किस तरह आपको कुछ सिखाती है। मजबूत बनाती है। नया रास्ता दिखाती है।

बात पर तर्कपूर्वक विचार करें

कई बार दूसरों की बात में दम भी होता है। अगर कोई सलाह देता है या कोई टिप्पणी करता है तो उसे स्वीकार या खारिज करने से पहले उस पर सोचें। क्या यह आपके नजरिये से मेल खाता है? क्या यह आपके मूल्यों से मेल खाता है? क्या वे वाकई उस क्षेत्र में अनुभवी हैं। आप भावुकता से निकलकर तर्क के आधार पर चीजों को तौलिए।

अपनी खूबियों को याद कीजिए

हम सबकी आदत होती है अपनी खामियों पर ज्यादा फोकस करने की, लेकिन हममें अच्छाइयां कहीं ज्यादा मात्रा में हैं, जिन्हें हम स्वीकार नहीं करते। तो अभी कागज और कलम लीजिए और अपनी खूबियों और आप जो अच्छा करते हैं, उसकी सूची बनाइए। उसमें हर छोटी-बड़ी उपलब्धि लिखें।

अपने 'श्रेष्ठ स्व' (हायर सेल्फ) के बारे में सोचें। 'हायर सेल्फ' यानी आपके कानों में पड़ने वाली वह आवाज, जो आपको स्मरण दिलाती है कि आप सही हैं, आप आत्मविश्वास से भरे और क्षमतावान हैं। मान लीजिए कि आपका 'हायर सेल्फ' आपका सबसे अच्छा दोस्त है, जो हर समय आपके पास रहता है। दूसरे क्या सोचते हैं, जब इस बात को लेकर आपको चिंता होने लगे तो इस 'हायर सेल्फ' बेस्ट फ्रेंड से पूछें। आप सिर्फ उसकी आवाज सुनें।

आंतरिक बदलाव, दूसरों की बात की परवाह करने की आदत छूटने में समय लगता है। अभ्यास करना पड़ता है। आप खुद को जितना दूसरों की राय से अलग करते जायेंगे, आपका मस्तिष्क उतना ही विश्वास भरे फैसले लेने का अभ्यस्त होता जायेगा। समस्या की पहचान पहला कदम है। अंततः जो विचार वास्तव में मायने रखेगा, वह आपका अपना विचार होगा।

(साभार दैनिक हिन्दुस्तान, 2.11.2015)

आनन्दमय जीवन के स्वर्णिम सूत्र

लेखक-से. नि. ब्रिगेडियर श्री करणसिंह जी चौहान

जीवन का प्रत्येक पल आनन्द का स्रोत है। हमारी मनोदशा को हमारे मस्तिष्क में उपलब्ध लगभग 200 रसायन प्रभावित करते हैं। चिन्ता की अवस्था में मस्तिष्क से एनडोरफिन रसायन का प्रवाह होता है, जो कि मोरफिन की भांति है तथा पीड़ाहारक के रूप में कार्यकर प्रसन्नचित्त रहने में हमारी सहायता करता है। चिन्ता एक आदत की तरह है, जिसे हमने दूसरों के मापदण्डों से अपनाया है। चिन्ता के साथ न तो कोई जन्मा है न जन्मेगा। अपनी धारणाओं में बदलाव लाने से ही चिन्ता से मुक्ति पायी जा सकती है।

प्रसन्नता तथा आनन्द किसी भी औषधि के रूप में नहीं आते, जिसका सेवनकर सदैव प्रसन्नता की स्थिति में रहा जा सके। हालांकि वैज्ञानिकों ने एक औषधि 'प्रोजेक' बनायी है, जो प्रसन्नता लाने में सहायक होती है। लेकिन सदैव प्रसन्नचित्त और आनन्दित रहने के लिए हमें स्वयं ही कुछ उपायों को अपनाना उचित होगा।

आज के युग में जबकि विज्ञान, संचार, तकनीकी-प्रगति, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में तीव्र परिवर्तन, पर्यावरण-प्रदूषण, जनसंख्या-विस्फोट, बेरोजगारी आदि चरम सीमापर हैं तथा रोगों के रूप में आनेवाले कल की परछाईं हमें स्पष्ट दिखायी दे रही है। ऐसी स्थिति में हमें स्वयं ही सही दिशा का चुनाव करते हुए जीवन का ध्येय निर्धारित करना होगा। इसके लिए कुछ उपाय विचारणीय हैं—

समय परिवर्तनशील है—बर्नाड शॉ ने कहा था—'जीवनभर तक प्रसन्नता! इसे कोई भी व्यक्ति सहन नहीं कर सकता। यह तो इस पृथ्वी को नरक बना देगी।' सुख-दुःख, चिन्ता-प्रसन्नता, रोग-स्वास्थ्य एक ही गाड़ी के दो पहियों की भांति हैं तथा इन्हें समान दृष्टि से देखने पर दुःख, चिन्ता एवं तनाव कभी नहीं होगा। एक बार एक राजा ने कुछ बुद्धिजीवियों से यह

पूछा कि मुझे एक पंक्ति में यह बताओ कि किस युक्ति से मैं अपने जीवन में सुख एवं दुःख के क्षणों को समान रूप से ग्रहणकर आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकूँ? बुद्धिजीवियों ने गहन विचार-विमर्श के पश्चात सुझाया, 'राजन्, आप सदैव हर स्थिति में यह विचार करें कि यह समय भी बीत जायेगा।'

संत तरेसा ने कहा था, 'कोई भी परिस्थिति तुम्हें विचलित नहीं कर सकती, कोई भी परिस्थिति तुम्हें भयभीत नहीं कर सकती, क्योंकि वह तो क्षणभर की ही होती है।'

जीवन एक महाभारत है, जिसमें युद्ध-कौशल की उत्कृष्टता अति आवश्यक है अर्थात् आनेवाले कल की तैयारी एक युद्ध की भांति करना आवश्यक है। 'यह भी बीत जायेगा' की धारणा से आशय आलस्य और आरामदायक जीवन व्यतीतकर क्षणिक आनन्द-प्राप्ति से न होकर एक ऐसे योद्धा से है, जो कि सकारात्मक सोच, कठिन परिश्रम एवं लगातार संघर्ष से विपरीत परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाता हुआ सदैव प्रगति के पथपर अग्रसर होता है।

जीवन को प्रकृति के अनुरूप ढालें एवं सरल बनायें। किसी भी सरल वस्तु एवं घटना को हम अपनी शिक्षा, परिवेश एवं अर्द्धविवेक से दुविधापूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं। ज्ञानप्राप्ति के लिए प्रकृति ने हमें कान एवं आंखें प्रदान की हैं। जबतक हमारी दृष्टि ध्येयपर है, हम सदैव प्रगति के पथपर आगे बढ़ते जाते हैं, परंतु जैसे ही ध्येय से हमारा ध्यान हटा, कई प्रकार की काल्पनिक चिन्ताएं हमें तुरंत घेर लेती हैं। प्रकृति के साथ सहयोग करते हुए जिस सरलता से नदी का जल प्रवाहित होता है, पक्षी खुले आकाश में विचरण करते हैं, सूर्य-चन्द्र उदय एवं अस्त होते हैं, वनस्पतियां चारों ओर सुगन्ध फैलाती हैं, उसी प्रकार मनुष्य को भी सरल भाव से आनन्दित होकर अपना जीवन-निर्वाह करना

चाहिए। प्रकृति के नियमों के विरुद्ध व्यवहार करने पर निश्चित ही दुष्कर परिणाम प्राप्त होंगे—जैसे मैड कारु, मैड हेन, बर्ड फ्लू, एड्स आदि। यह सब गम्भीर रोग एक दिशा की ओर संकेत करते हैं—‘सफल जीवन की कला सदैव प्रकृति के अनुकूल रहना है।’

लक्ष्य यानी जीवन की वास्तविक उत्तर दिशा—गहनता से विचार के पश्चात हमें यह आभास होने लगता है कि हमारे लिए आवश्यक क्या है? ‘घड़ी’ या ‘कम्पास’ (कुतुबनुमा)। घड़ी समय दर्शाने तथा विभिन्न कार्यकलापों से जुड़ी है, लेकिन कम्पास हमारे मूल्यों, लक्ष्यों एवं उद्देश्यों से जुड़ा होता है। कोई भी व्यक्ति अपनी आंखें बन्द करके उत्तर दिशा की ओर संकेत नहीं कर सकता है और जब ऐसे व्यक्तियों का समूह उत्तर दिशा ढूँढ़ने का प्रयत्न करे तो वे अवश्य अलग-अलग दिशा की ओर संकेत करेंगे। वास्तविक उत्तर दिशा के भान के लिए कम्पास जरूरी है, जिसकी सुई हमेशा उत्तर दिशा की ओर ही संकेत करती है। इसी प्रकार भविष्य को आनन्दमय बनाने के लिए हमें हमारे लक्ष्य अर्थात् निर्धारित दिशा का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि जीवन की अधिकांश समस्याएं सुनिश्चित एवं सही दिशा में कार्य न करने से ही उत्पन्न होती हैं। ज्यादातर व्यक्ति सुनिश्चितता इसलिए नहीं अपना सकते, क्योंकि उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता है कि कब क्या करना चाहिए? वैज्ञानिक रीति से विश्लेषण करने पर वास्तविक उत्तर दिशा जो कि हमारी दृष्टि (विजन) से जुड़ी होती है, इसके चार बिन्दु विचारणीय हैं—1. आपको क्या परिणाम और कब चाहिए, 2. परिणाम को प्राप्त करने के आधारभूत नियम (ग्राउण्डर रूल) एवं दिशा-निर्देश (गाइड लाइन) क्या हैं, 3. संसाधन की उपलब्धता, 4. समय-समय पर स्वयं पर क्या-क्या नियन्त्रण तथा समय-सीमा होने चाहिए। इस प्रक्रिया में अपने कम्पास एवं घड़ी का समन्वय करना आवश्यक है।

एक बार दत्तात्रेयजी कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक घर के बाहर कुछ अतिथि बैठे हैं।

घर के अन्दर अकेले एक कन्या थी और वह अतिथियों के लिए चावल कूट रही थी, जिससे वह उनके लिए भोजन बना सके। युवती ने बहुत-सी चूड़ियां धारण की हुई थीं और वे एक-दूसरे से टकराकर बज रही थीं। युवती ने एक-एक करके चूड़ियों को उतारना प्रारम्भ कर दिया और जब दोनों हाथों में एक-एक चूड़ी ही रह गयी तब आवाज समाप्त हो गयी। दत्तात्रेयजी ने इससे यह सीखा कि जीवन की वास्तविक दिशा का ज्ञान मनुष्य को तभी हो सकता है, जब वह शोरगुल, भीड़, वाद-विवाद से परे रहे।

कम्पास के सहारे ही पायलेट वायुवान व उसके अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते हैं, अथाह समुद्र में समुद्री जहाज का संचालन भी लक्ष्यपर कायम रहने से ही होता है। इसमें एक बात ध्यान देने योग्य है कि सही दिशा ज्ञात करने के पश्चात भी हर व्यक्ति का एक डीविजन होता है, जिसका पता स्वयं के अनुभव एवं प्रयोगों से करना आवश्यक है। सेना के प्रशिक्षण में यह दिशा प्रदान की जाती है ताकि सैनिक दुश्मन के क्षेत्र में भी अपने डीविजन को ध्यान में रखते हुए अपने गन्तव्य पर पहुंच सके।

सदैव सीखते रहने की क्षमता—यह विश्वास रखिये कि जो भी व्यक्ति हमारे सम्पर्क में आते हैं, हमें कुछ-न-कुछ सिखाने को आते हैं। यहां तक कि बच्चे भी हमें बहुत कुछ सिखाने की क्षमता रखते हैं। अगर हम खुले हृदय से उनके ज्ञान का अनुसरण करें, तो वे हमारे शिक्षक बन सकते हैं। इन्हीं भावनाओं एवं आन्तरिक ज्ञान से ही एक अंग्रेज कवि ने कहा है—‘चाइल्ड इज दी फादर ऑफ मैन’ यह तभी सम्भव है, जब हम एक छात्र की प्रवृत्ति अपनायें। सीखने में ही उमंग, ज्ञान एवं आनन्द है। इससे ही जीवन में अवसर ग्रहण किये जा सकते हैं।

सीखने का अर्थ है प्रगति करना और स्वयं को विकसित करना। हेलन केलर ने जीवन-पर्यन्त अपनी शारीरिक असमर्थताओं के होते हुए भी अपने आपको सीखने की प्रवृत्ति में स्मरणीय उदाहरण के रूप में

प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है—‘जब कभी एक द्वार बन्द होता है, तो प्रभु अनगिनत द्वार खोलकर हमें अवसर प्रदान करते हैं, लेकिन हम उस बन्द द्वारपर ही निराश बैठे प्रतीक्षा करते रहते हैं।’

आदतों के भंवर से बचाव—बार-बार एक ही तरह के कार्य करने से यह आदत में परिवर्तित हो जाता है। आदतें ही चरित्र का निर्माण करती हैं और चरित्र भाग्य का निर्माता है। इसलिए इसपर गम्भीरता से हर समय ध्यान करना चाहिए कि कोई भी रोजमर्रा का कार्य एक आदत तो नहीं बन रहा है। आदतों को छोड़ना अति कठिन है। एक बार एक वृद्ध एक युवा के साथ जंगल में भ्रमण कर रहा था। उसने युवा को सर्वप्रथम एक उगता हुआ पौधा उखाड़ने को कहा। युवा ने उसे उखाड़कर फेंक दिया। फिर एक दिन बड़े पौधे को उखाड़ने के लिए कहा। वह भी उस युवा ने उखाड़ दिया। इसके पश्चात एक बड़ा पौधा उखाड़ने के लिए कहा, जिसे भी उसने थोड़े प्रयास से उखाड़ दिया, मगर चौथा पौधा जो कि पेड़ बन गया था, वह युवा उसे नहीं उखाड़ पाया। यही दशा हमारी आदतों की होती है। आदत को जड़ से उखाड़ने का एक सरल तरीका है—उस आदत के विपरीत आदत डालने का प्रयास करना। अगर आप सदैव चिन्ताग्रस्त रहते हैं, तो प्रसन्नचित्त रहने का प्रयास करें एवं प्रसन्नचित्त, सकारात्मक सोचवाले व्यक्तियों की संगत करें।

सेवा के लिए समर्पण—बिना किसी स्वार्थ एवं प्रतिफल की आशा के दूसरों की सच्चे हृदय से सेवा करने से अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। यह सेवा निष्काम कार्य की श्रेणी में आती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—‘प्रभु उन्हीं की सहायता करता है, जो दूसरों की सहायता करते हैं।’ इस सन्दर्भ में जीवन का ध्येय हर वक्त यह हो—‘मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?’ तो अवश्य सुख का अनुभव होता है। एक संत से किसी ने सदैव प्रसन्न रहने का उपाय पूछा तो उन्होंने कहा कि किसी अन्य व्यक्ति को प्रसन्न

करो, आप स्वयं भी प्रसन्नचित्त हो जायेंगे। एक सभ्य और ज्ञानी व्यक्ति सदैव सुख देकर प्रसन्न होता है एवं अज्ञानी व्यक्ति दुःख देकर प्रसन्न होता है।

सही दिशा में प्रयास से आनन्द प्राप्ति—निम्नलिखित सात बातों के बचाव से अवश्य ही आनन्द की प्राप्ति होती है—1. सदैव अपने ही बारे में बात करना, 2. सदैव स्वार्थी बने रहना, 3. अपने कर्तव्य का समय पर निर्वाह नहीं करना, 4. हर वाक्य में ‘मैं’, ‘मेरा’ का प्रयोग करना, 5. हर समय अपने भौतिक सुख के बारे में सोचना, 6. हर समय यह लालसा रखना कि आपकी प्रशंसा ही की जाये, 7. लालच भरे विचारों से सदैव अपने बारे में अन्य लोगों के विचार सुनने के लिए आतुर रहना।

जिस प्रकार सामाजिक नियम हर काल के लिए बनाये जाते हैं एवं परिवर्तनशील हैं, उसी प्रकार सुख की परिभाषा तो परिवर्तनशील है, मगर आनन्द की परिभाषा सदैव एक ही रहती है, क्योंकि यह तो एक आन्तरिक अनुभूति है। यह शास्त्र, पुस्तकें एवं लेख पढ़ने से नहीं बल्कि सत्य को आचरण में ढालने से ही मिलती है। एक कागज पर शहद लिखकर और उस कागज का सेवन करने से शहद की मिठास प्राप्त नहीं हो सकती, न ही गधे को गंगा जल में नहलाने से वह बुद्धिमान हो जाता है। सही दिशा में प्रयास एवं परिश्रम से आनन्द की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। चाबी हमारे पास है और ताला भी हमने ही जकड़ रखा है, उसे खोलना भी हमें ही पड़ेगा, क्योंकि हर व्यक्ति आनन्द प्राप्ति का अधिकारी है। अपने आपको असमर्थ, निराश न मानकर अपनी विशाल क्षमता का भान निष्काम कर्म, अध्ययन, सत्संग, स्वास्थ्य, प्रार्थना, पूजा-अर्चना, ध्यान और सेवा से सहज ही किया जा सकता है।

अन्त में सफलता से बढ़कर कोई निधि नहीं, सफल आदमी से बढ़कर कोई सिद्ध नहीं है।

(साभार : कल्याण, अप्रैल 2018)

क्या वेद नसली वर्गीकरण का गवाह है?

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

पं. शिवशंकर ने 'दास' शब्द की बड़े विस्तार से व्याख्या अपनी किताब में प्रस्तुत किया है। अध्ययन में अनेक शास्त्रों, महाकाव्यों, स्मृतियों (मनु) से उद्धरण रखा गया है। उनके अनुसार, "मैं आगे दिखलाऊंगा कि शूद्र शब्द का अर्थ वेदानुसार निकृष्ट नहीं है। शूद्र शब्द बहुत उत्तम अर्थ रखता था। चारों वेदों में आप दृढ़ जाइए आपको एक वाक्य भी ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें दासवत शूद्रों के लिए भी कहा गया हो कि शूद्रों को नष्ट करो वा शूद्रों को अपने वश में करो, ये बड़े दुष्ट, पापी, नीच, कर्महीन, अव्रती हैं इत्यादि, किन्तु इसके विरुद्ध हम लोगों को दिखला चुके हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के लिए समान ही प्रार्थना-आशीर्वादादि आए हैं। शूद्र आर्य हैं, परन्तु दास अनार्य। शूद्र वर्ण है; शूद्र व्यवसायी है, परन्तु दास चोर, डाकू। शूद्र पूज्य, मान्य, यज्ञार्ह परन्तु दास हन्तव्य। व्यवहार चलाने के लिए शूद्र एक अंग हैं, परन्तु दास सब अंगों को नाश करनेवाला है, इत्यादि। वेद के अध्ययन से इन दोनों शब्दों में महान भेद प्रतीत होता है।

'मैं नहीं कह सकता कि इतना भेद होने पर भी आज शूद्र शब्द का अर्थ इतना क्यों गिर गया।'¹

“जातो नार्यामनार्यामार्यादर्यो भवेद् गुणैः।

जातोऽप्यनार्यादर्यामनार्य इति निश्चयः॥

(मनु. 10/66 या 67)

जातः। नार्याम। अनार्यायाम। आर्याद। आर्यः। भवेद्। गुणैः। जातः। अपि। अनार्यात्। आर्यायाम। अनार्यः। इति। निश्चयः॥

अर्थात् आर्य से अनार्य नारी में, अर्थात् दस्यु आदि की अनाड़ी स्त्री में उत्पन्न हुआ बालक गुणों से, अर्थात् यदि उनमें अच्छे गुण हों तो वह आर्य कहलावेगा, परन्तु अनार्यात् दस्यु वा दास से आर्यायाम् + अपि—आर्य स्त्री में भी उत्पन्न हुआ बालक अनार्यः+इति निश्चयः—अनार्य ही है, यह निश्चय है। इससे भी सिद्ध

होता है कि 'आर्य' शब्द पीछे जातिवाचक हो गया। इससे यह भी स्पष्ट है कि आर्य लोग दस्यु वा दास की कन्या से विवाह करते थे और उनकी सन्तान आर्य ही कहलाते थे, किन्तु अपनी कन्या अनार्यों को नहीं देते थे।²

वाचस्पत्यं कोश में 'आर्य शब्द' के सम्बन्ध में लिखा है कि स्वामी, गुरु, सुहृद्, श्रेष्ठकुलोत्पन्न, पूज्य, श्रेष्ठ आदि अनेक अर्थ में आर्य शब्द आता है। 'ऋ' धातु से ण्यत् प्रत्यय होने पर इसकी सिद्धि होती है। "कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यम् नाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः।" कर्तव्य कार्य को करता हुआ अकर्तव्य को न करता हुआ, सदा अपने प्रकृताचार में स्थित पुरुष आर्य कहाता है।

वृतेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया।

उत्तम सदाचार से पुरुष 'आर्य' होता है, धन वा विद्या से नहीं।³

'राक्षस किसे कहते हैं?'

'जो लोग सदा रात्रि में मारना-पीटना-लूटना आदि कर्म करते हैं। जो कभी-कभी मनुष्य का मांस भी खा जाते हैं। जो सदा हिंसा करना ही परम धर्म समझते हैं, वे राक्षस हैं। मनुष्यों के निवास स्थान पर आक्रमण करते हैं, अतः ये 'यातुधान' कहाते हैं (यातु = आक्रमण करना। धान = धानी जैसे राजधानी। धान वा धानी शब्द एकार्थक हैं। कच्चा मांस तक खा जाते हैं, अतएव इनको क्रव्याद (क्रव्य=मांस। आद=भक्षक) कहते हैं। गधे की तरह चिल्लाते हैं, अतः 'राक्षस' अथवा जिनसे अपनी रक्षा की जाये। इनके नामों से ही पता चलता है कि घृणित कर्म करने वाले को राक्षस, पिशाच आदि कहा करते हैं। अब यहां कतिपय मन्त्र इस विषय में—

2. वही, पृ. 59-60।

3. वही, पृ. 60।

1. वही, पृ. 57।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं गूहमाना।
वत्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः॥

(ऋ. 7/104/17)

प्र=0। या = जो। जिगाति = जाति है। खर्गला = उलूकी = उल्लूपक्षी। नक्त = रात्रि। तनू = शरीर। वत्र = गर्त, खड्डा, खाई। अनन्त = बहुत। पदीष्ट = गिरे। ग्रावा = पत्थर। उपब्द = उपशब्द = चिल्लाहट।

या = जो राक्षसी नक्तम् = रात्रि में द्रुहा = द्रोह से युक्त हो खर्गला + इव = उलूकी के समान तन्वम + अप + गूहमाना = शरीर को छिपाती हुई प्र+ जिगाति = हिंसा करने के लिए निकलती है सा = वह राक्षसी अनन्तान् + वत्रान् = अनन्त खण्डकों में अव + पदीष्ट = अवाङ्मुख होकर गिरे और रक्षसः = राक्षसों को उपब्दैः = चिल्लाहटों के साथ ग्रावाणः + नन्तु = पत्थर से हनन करें।

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे॥

(ऋ. 7/104/18)

मरुतः = हे वायु के समान बलवान रक्षक पुरुषों। आपलोग विक्षु = प्रजाओं में वि तिष्ठध्वम् = विविध प्रकार से रक्षार्थ स्थित होओ। तदन्तर इच्छत् = दुष्टों के संहार के लिए इच्छा करो। रक्षसः + गृभायत = राक्षसों को पकड़ो और पकड़कर संपिनष्टन = चूर्ण-चूर्ण कर दो। ये = जो वयः + भूत्वी = उलूकपक्षी के समान होकर नक्तभिः = रात्रि में पतयन्ति = इधर-उधर हिंसा के लिए गिरते हैं। ये + वा = और जो देवे + अध्वरे = प्रदीप्त यज्ञ में रिपः + दधिरे = हिंसा किया करते हैं।

यहां विस्पष्ट कहा गया है कि यज्ञ के विध्वंसकारी और रात्रि में आक्रमण करने वाले को राक्षस कहते हैं।¹

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या विवासताम्।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः॥

(ऋ. 7/104/21)

इन्द्रः = परमैश्वर्यशाली राजा यातूनाम् = उन हिंसक यातुधान = राक्षसों का पराशरः + अवभत् = भी हिंसक है, जो राक्षस हविः + मथीनाम् = यज्ञों के

नाश करनेवाले हैं और अभि + आविवासताम् = सदा आमने-सामने आक्रमण करनेवाले हैं, उनका भी नाश करनेवाला राजा ही होता है परशुः + यथा + वनम् = परशु-शस्त्र जैसे वन को काटता है पत्रा + इव = और जैसे मिट्टी के पात्रों को मुद्गर चूर्ण करता है तद्वत् शक्रः = समर्थवीर पुरुष सत + रक्षसः = प्राप्त = आगत राक्षसों को भिन्दन् = छिन्न-भिन्न करता हुआ अभि+इत् +उ+एति = चारों ओर जाता है।

सत् = प्राप्त। तिर और सत् ये दोनों प्राप्त के नाम हैं। (निरुक्त 3/20)

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।

सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

(ऋ. 7/104/22)

उलूकयातु = उलूक के समान गमन करनेवाला। शुशुलूकयातु = शिशु = बालक। छोटे बच्चे उलूकवत गन्ता। श्वयातु = कुक्कुरवत् गन्ता, कोक = चक्रवाक, चकवा। सुपर्ण = श्येन, बाजपक्षी। गृध्र = गीध। दृषत = पाषाण।

इन्द्र = हे राजेन्द्र! उलूक छोटे उलूक, कुत्ते, चकवा, बाज और गीध के समान आक्रमण करनेवाले जो रक्षः = राक्षस हैं, उनको पाषाण से प्र + मृण = हनन करो।

इतने वर्णन से आप लोगों को अच्छे प्रकार विदित हो गया होगा, कि राक्षस वा राक्षसी कौन हैं और क्यों इनके वध के लिए आज्ञा है। निःसन्देह महादुष्ट पुरुष को राक्षस कहते हैं। अपने कर्म से ही मनुष्य राक्षस बन जाता है। मद्यपी लङ्काधिपति रावण ऋषिकुल का था। कुबेर उसके भ्राता थे। विभीषण-समान जिसका भाई था, वह राक्षस कहलाता था।²

इसी सूक्त में दो मंत्र और हैं जो हमें बतलाते हैं कि कभी भी राक्षस-कर्म नहीं करना चाहिए। यथा—

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अथा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेव्याह॥

(ऋ. 7/104/15)

अद्य = आज मुरीय=मैं मर जाऊँ यदि + यातुधानः + अस्मि = यदि मैं राक्षस हूँ। यदि + वा = और यदि

1. वही पृ. 65-66,

2. वही, पृ. 66-67

मैं पुरुषस्य + आयुः = किसी पुरुष की आयु को ततप = नष्ट करता हूँ। यदि मैं ऐसा हूँ तो हे भगवन्। मैं आज ही मर जाऊँ, परन्तु यदि मैं ऐसा नहीं हूँ तो यः = जो मा = मुझको मोघम् = व्यर्थ ही यातुधान + इति + आह = यातुधान = राक्षस कहता है सः = वह मिथ्या भाषी अथा = तब दशभिः + वीरैः = दशवीरों, अर्थात् अपने सब बन्धु-बान्धवों के साथ वि+यूया = वियुक्त होवें।

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।

इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥

(ऋ. 7/104/16)

यः = जो अयातुम् + मा = अराक्षस मुझको यातुधान + इति + आह = यातुधान = राक्षस कहता है यः + वा = और जो रक्षाः = राक्षस होने पर भी शुचिः अस्मि + इति+आह = मैं पवित्र हूँ ऐसा कहता है। तम् = उस दोनों प्रकार के मनुष्य को महता+वधेन= महान् वध के साथ इन्द्रः = राजा वा परमेश्वर हन्तु=हनन करे और विश्वस्य+जन्तोः+अधमः=समस्त प्राणियों में अधम वह पुरुष पदीष्ट=पतित होवे।”¹

इन मंत्रों से दो प्रकार के संदेश प्राप्त होते हैं:

1. जो यज्ञ के विध्वंसकारी थे, जो रात्रि में छिपकर उल्लू अथवा बाज के समान आक्रमण कर देते थे उन्हें राक्षस कहा गया है।

2. कुछ लोगों के ऊपर झूठा आरोप भी लगाया जाता था कि वे राक्षस थे अर्थात् यज्ञ के विध्वंसक थे। झूठे आरोप से खिन्न होकर प्रतिकार करते हुए वे कहते थे कि—‘मैं मर जाऊँ यदि मैं राक्षस हूँ’ तथा ‘जो झूठ ही मुझे राक्षस कहता है या जो राक्षस होकर भी पवित्र होने का दावा करता है, इन दोनों प्रकार के लोगों की राजा हत्या कर दें।’

‘वर्ण’ शब्द के प्रयोग के बारे में पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ लिखते हैं “ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार ‘वर्ण’ कहलाते हैं, जाति नहीं, क्योंकि चारों वेदों में इन चारों के लिए ‘जाति’ शब्द का प्रयोग नहीं है। वेदों के अनुसार मनुष्यमात्र प्रथम दो भागों में विभक्त हुए हैं। आर्य और दस्यु। शुभ-कर्म करने वाले आर्य

और दुष्ट कर्म करने वाले दस्यु वा दास। आर्य और दस्यु दोनों के लिए ‘वर्ण’ शब्द का प्रयोग वेद में आया है।

ससानात्याँ उत सूर्य ससानेन्द्रः समान पुरुभोजसं गाम्।

हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यूनार्य वर्णमावत्॥

(ऋ. 3/34/9)

इस जगत में इन्द्रः = परमात्मा ने मनुष्यों के लिए अत्यान् = हय प्रभृति पशु ससान = दिये हैं उत+सूर्यम् = प्रकाश के लिए सूर्य ससान = दिया है पुरुभोजसम् + गाम् = अनेक भोज्य+पदार्थ संयुक्त पृथ्वी ससान=दी है। इसके अतिरिक्त उत+हिरण्ययम् + भोगम् = सुवर्णादियुक्त भोग्य वस्तु दी है और वह परमात्मा दस्यून = दूष्ट, चोर, डाकू को हत्वी = हनन कर आर्यम् + वर्णम् = आर्यवर्ण की प्र+आवत् + सदा रक्षा किया करता है।

दानार्थक ‘षणु’ धातु से ‘ससान’ बनता है, ‘प्रार्यम्’ में ‘प्र+आर्यम्’ दो शब्द हैं।

यहां ‘आर्य’ वर्ण शब्द आया है। आर्य नाम श्रेष्ठ याज्ञिय, वैदिक व्रती, आस्तिक आदि धार्मिक पुरुष का है। ऐसे ‘आर्यपुरुष’ के लिए ‘वर्ण’ शब्द का प्रयोग देखते हैं।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।

श्वघ्नोव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः॥

(ऋ. 2/12/4)

येन = जिनसे इमा + विश्वा = इस विश्व को च्यवना + कृतानि = नष्ट बनाया है अर्थात् जिस राजा ने शिक्षा के द्वारा मनुष्यों को नम्रीभूत किया है और जो शिक्षा के अधीन नहीं हुए ऐसे जो दासम् + वर्णम् = जगत में अशान्ति फैलानेवाले उपक्षयिता, नास्तिक वर्ण हैं उनको यः = जिसने अधरम् = नीचे करके गुहा + अकः = गह्वर में स्थापित किया और यः = जो श्वघ्नी + इव = मृग के मारनेवाले व्याध के समान लक्षम् = लक्ष्य को जिगीवान् = जीतता है और अर्यः = प्रजाओं का स्वामी वह राजेन्द्र पुष्टानि = पुष्टकारी वस्तुओं को सदा आदत् = प्रजा के सुख के लिए ग्रहण किया करता है जनासः = हे मनुष्यो! सः इन्द्रः = वही इन्द्र, अर्थात् हमलोगों का राजा है।

1. वही, पृ. 67-68

यहां पर भी 'दास' के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। वर्ण शब्द का अर्थ 'चुननेवाला' है। अपनी-अपनी मति से मनुष्य अपना-अपना जीविकोपाय चुना करता है। किसी ने अच्छा व्यवसाय चुना, किसी ने बुरा व्यवसाय। इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के लिए वेद में 'वर्ण' शब्द का प्रयोग देखते हैं, परन्तु इनके लिए 'जाति' शब्द का प्रयोग कहीं भी उक्त नहीं है, अतः वेदानुसार मनुष्यों में भिन्न-भिन्न व्यवसायियों को वर्ण शब्द द्वारा व्यवहृत करना सर्वथा उचित है।¹

'आर्य सिद्धान्त' के सम्बन्ध में डॉ. बी. आर. आंबेडकर के निष्कर्ष से सहमति व्यक्त करते हुए विश्वविख्यात इतिहासकार रोमिला थापर का अभिमत है :

"प्राच्यविदों के लिए संस्कृत तथा कुछ यूरोपीय भाषाओं के बीच का संबंध सबसे महत्त्वपूर्ण खोज थी। इसी के आधार पर आगे सामान्य भारोपीय विरासतों का काम किया गया। प्राचीन भारतीय अतीत को पूर्वकालीन यूरोपीय संस्कृति के एक विस्मृत पहलू के रूप में देखा गया, और भारत के आर्यों को यूरोपीयों के निकटतम बौद्धिक रिश्तेदार माना गया। संस्कृत के अध्ययन पर जोर दिया गया, क्योंकि उसे यूनानी भाषा से पहले के काल का और इसलिए अधिक शुद्ध रूप में सुरक्षित माना गया। इस उपमहाद्वीप में आर्य और गैर आर्य भाषाएं बोलनेवालों के बीच तीव्र भेद किया गया, और आर्यों में अनेक गुणों का आधान किया गया।"²

"आदिकालीन भारत की विचारधारा और उसकी व्याख्या" विषय पर रोमिला थापर ने 1974 ई. में कार्नेल में एक व्याख्यान दिया था जिसका कुछ अंश यहां प्रासंगिक हैं :

1. "भारतीय विद्या के अध्ययन के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी में जो सबसे प्रभावकारी सिद्धान्त प्रकट हुआ, वह था आर्य नस्ल का सिद्धान्त। आर्य शब्द ईरानी अश्वेता और संस्कृत ग्रंथों से आता है। इसे नस्ल के साथ जोड़कर आर्यों की एक नस्ल का सिद्धान्त

प्रतिपादित किया गया। इन्हें स्थानीय निवासियों से शारीरिक दृष्टि से पृथक बतलाया गया। वे सांस्कृतिक दृष्टि से भी विशिष्ट थे क्योंकि उनकी भाषा भारोपीय (भारतीय+यूरोपीय) थी। यह भी माना गया कि आर्य भारोपीय नस्ल और भाषा परिवार की एक शाखा थे, उन्होंने बड़ी संख्या में उत्तर भारत पर ई.पू. द्वितीय सहस्राब्दी में आक्रमण कर स्थानीय निवासियों को पराजित किया तथा यहां वैदिक आर्य संस्कृति की स्थापना की जो आगे चलकर भारतीय संस्कृति की बुनियाद बनी।

2. मैक्स मूलर के जीवन काल में यह सिद्ध हो चुका था कि भाषा की नस्ल से अभिन्नता बतलाना एक दोषपूर्ण तर्क है। मैक्स मूलर ने अपने जीवन में ही आगे जाकर अपना मत स्पष्ट कर दिया था किंतु तब तक काफी देर हो चुकी थी और यह विचार जड़ पकड़ चुका था। आश्चर्य की बात यह है कि आर्यन शब्द की व्याख्या नस्ल के रूप में की गई क्योंकि संस्कृत ग्रंथों में आर्य शब्द का प्रयोग एक कुलीन संभ्रांत पुरुष के लिए है। वैदिक संदर्भ में उस व्यक्ति की भाषा संस्कृत ही हो सकती थी और वह वर्ण के नियमों का पालन करनेवाला रहा होगा। नस्ल की बात आर्य की तुलना दास से करने पर आयी होगी। ऋग्वेद में दास की आकृति आर्य से भिन्न बतलाई गई है। इसकी व्याख्या इस रूप में की गई है कि आर्य और दास दो पृथक-पृथक नस्लों के लोग थे। आर्यों में आगे चलकर तीन उच्च वर्ण हुए। दास सबसे नीचे रहा। उसकी गणना शूद्र वर्ण में हुई।

3. वर्ण शब्द का सम्बन्ध रंग से है। पारिभाषिक अर्थ में यह समाज में जाति संगठन का द्योतक माना जाता है। इसे भी आर्य-नस्ल सिद्धान्त की पुष्टि में पेश किया गया। इसे वर्ण की 'वैज्ञानिक' व्याख्या बतलाया गया।³

4. "कुछ विद्वान भारतीय समाज के आलोचकों का उत्तर देकर इस समाज का बचाव कर रहे थे।

1. वही, पृ. 81-82,

2. प्रा.भा सामाजिक इति. पृ. 8

3. आदि कालीन भारत की व्याख्या, अनु. मंगलनाथ सिंह पृ. 3,

आखिरकार आर्य-नस्ल का सिद्धान्त अमान्य हो गया और तब उस विचार का मुद्दा उठ खड़ा हुआ जिसे आर्यों की समस्या कहा जाता है।”¹

5. “आर्यों से संबंधित सिद्धान्त को चुनौती देने का आधार वे त्रिविध प्रमाण हैं जो हाल के वर्षों में पुरातत्व, भाषाविज्ञान और सामाजिक नृ-विज्ञान ने प्रस्तुत किए हैं। सिंधु घाटी की सभ्यता के नगरों की खोज और उनके उत्खनन के फलस्वरूप भारत का इतिहास ई.पू. तृतीय सहस्राब्दी तक पहुंच गया है। अब भारतीय इतिहास का मूलाधार आर्य संस्कृति न होकर सैधव सभ्यता हो गया है। सिन्धु तट के नगर वैदिक सभ्यता से कम से कम सहस्र वर्ष प्राचीन है, ई.पू. द्वितीय सहस्राब्दी के प्रारंभ में इन नगरों के क्षय और सहस्राब्दी के अंत में वैदिक संस्कृति के एक अंग के रूप में संस्कृत के प्रसार का प्रारंभ माना जाता है।

6. वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। ऋग्वेद की संस्कृति यायावर पशुपालकों की संस्कृति थी। ये लोग नागर जीवन से परिचित थे। आदि आर्यों ने उत्तर-पश्चिम भारत पर उसे जीत लिया और इन नगरों को ध्वस्त कर दिया तो इसके कुछ न कुछ पुरातात्विक प्रमाण मिलने चाहिए थे। एक नगर के एक हिस्से से कुछ सामग्री अवश्य मिली है जिसे किसी विजय का परिणाम माना जा सकता है। किन्तु यह प्रमाण भी संदेह से परे नहीं है। सिंधु घाटी के नगरों का हास बड़े पैमाने पर भौगोलिक परिवेश में परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ।”²

7. “समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह ज्ञान बड़ा फायदेमंद हुआ कि जन्मना वर्ण, शास्त्रीय हैसियत के सूचक हैं। किन्तु सबसे लाभप्रद अवदान जातियों के निर्माण के अध्ययन से हुआ। इससे स्पष्ट हो गया है कि जाति समाज भिन्न-भिन्न नस्ली अस्तित्व के कारण नहीं बना और न ही एक नस्ल वालों द्वारा दूसरी नस्ल के लोगों को पराजित करने से इसका निर्माण हुआ। जाति के लिए आनुवंशिक समूहों का होना और उनके द्वारा आपस में विवाह करना आवश्यक है। जाति के लिए ये

निर्णायक बातें हैं। इनमें प्रतिष्ठा के सोपान होते हैं। प्रतिष्ठा-सोपान का आधार व्यवसाय, शौचाशौच संबंधी कुछ विश्वास, और क्षेत्र विशेष में सतत निवास होता है।”³

8. “पुरातात्विक संस्कृतियों को जबरदस्ती आर्य कहने की अपेक्षा पुरातात्विक प्रमाणों के प्रकाश में इस बात का अनुसंधान होना चाहिए कि आदिकालीन भारतीय समाज का विकास किस प्रकार हुआ। इसी ढंग से हम उस सामाजिक प्रक्रिया को समझ पाएंगे जिससे पुरातन भारतीय समाज की रचना हुई थी। प्राचीन ग्रंथों में किसी व्यक्ति के लिए आर्य शब्द का प्रयोग आदर प्रकट करने के लिए होता था। दास शब्द में नस्ल का तत्त्व संभव है। किन्तु आर्य शब्द से किसी की शारीरिक विशेषता पर जोर नहीं है। वेदों में ऐसे प्रमाण हैं जहां दासों को भी आर्य कहा गया है। दासीपुत्राः ब्राह्मणाः प्रयोग मिलते हैं (पाद टिप्पणी 48, पृ.79 : बृहदेवता 4.11.15; 21-3 में दीर्घतमस के जन्म का वर्णन है और उनके पुत्र कक्षीवंत को दासी का पुत्र कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण 2.19 और कौशिकी ब्राह्मण 12.3 में ऋग्वेद के ऋषि कवस एलूस को दासी-पुत्र कहा है।) दास राजा ब्राह्मणों को दान देते थे। यह जानना दिलचस्प होगा कि पुरु जैसे प्रतिष्ठित वंश पर अशुद्ध संस्कृत बोलने का आक्षेप आया है। यह भी उल्लेखनीय है कि पुरु एक प्राचीन राजा था जो असुर-राक्षस था जिसे भरत ने उखाड़ फेंका था (शतपथ ब्राह्मण)। इससे तो पौरवों को शुद्ध आर्य मानना कठिन हो जायेगा।”⁴

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. बी.आर.आंबेडकर सरीखे समाजशास्त्री, पं. शिवशंकर शर्मा जैसे वैदिक विद्वान और प्रख्यात इतिहासविद् रोमिला थापर के मतों में एकता है। तब एक शंका शेष रह जाती है कि “ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्” इस ऋचा का अभिप्राय क्या है?

—क्रमशः

1. वही, पृ. 4

2. वही, पृ.8

3. वही, पृ. 9

4. वही, पृ. 73

व्यवहार वीथी

श्रेष्ठ कौन?

घर, परिवार, मठ-आश्रम, समाज, पार्टी मनुष्यों के किसी भी छोटे-बड़े समूह को सुचारू एवं व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए एक मुखिया, व्यवस्थापक, गुरु, महंत, अध्यक्ष की आवश्यकता होती है, जिसके संरक्षण एवं निर्देश में सभी लोग काम कर सकें। यदि सभी लोग किसी से राय लिए बिना अपने-अपने मन के अनुसार काम करने लगे तो न तो आपस में एकता बनी रह सकती है और न किसी दिशा में कोई विकास का काम हो सकता है। अब प्रश्न यह है कि मुखिया या व्यवस्थापक किसे बनाया जाना चाहिए। इसका उत्तर यह है कि जो गुण और योग्यता में दूसरों की अपेक्षा बड़ा एवं श्रेष्ठ हो उसे ही मुखिया या व्यवस्थापक बनाना चाहिए। लेकिन बड़ा एवं श्रेष्ठ कौन है इसका निर्णय कैसे किया जाये क्योंकि हर व्यक्ति अपने को दूसरों से अधिक गुणवान एवं योग्य समझता है। इसका उत्तर है जिसके निकल जाने या न रहने पर घर, परिवार, समाज और पार्टी न टूटे या न बिखरे वह बड़ा एवं श्रेष्ठ नहीं है किन्तु बड़ा एवं श्रेष्ठ वह है जिसके निकल जाने पर घर-परिवार, समाज एवं पार्टी टूट या बिखर जाये। इस संदर्भ में बृहदारण्यक उपनिषद् में एक बड़ा सुंदर और रोचक रूपक दिया गया है—

एक बार शरीर की सभी इंद्रियां आपस में विवाद करने लगीं कि हममें श्रेष्ठ कौन है। जब वे आपस में निर्णय नहीं कर सकीं तब प्रजापति के पास गयीं और उनसे पूछा कि भगवन्! हममें श्रेष्ठ कौन हैं? प्रजापति ने कहा—तुममें से जिसके निकल जाने पर शरीर पापमय, घृणित और बेकार हो जाये, मर जाये वह श्रेष्ठ है।

ज्ञान का आदान-प्रदान वाणी से ही होता है अतः वाणी को अपने आप का श्रेष्ठ होने का बड़ा अहंकार था। अतः उसने सोचा कि चलो मैं इस शरीर से निकल जाती हूँ और देखती हूँ कि मेरे बिना ये सब कैसे जीवित रहते हैं और गुजर-बसर करते हैं। वाणी शरीर

से निकलकर एक वर्ष तक बाहर घूमती रही। जब लौटकर आयी तब उसने पूछा कि मेरे बिना तुम सब कैसे जीवित रहे?

इंद्रियों ने कहा—जैसे गूंगा व्यक्ति न बोलते हुए प्राण से सांस लेता है, आंखों से देखता है, कान से सुनता है, मन से मनन करता-जानता है और वीर्य से संतान पैदा करता और जीवित रहता है वैसे हम सब तुम्हारे बिना जीवित रहे।

उक्त बातें सुनकर वाणी को अपनी हकीकत का पता चल गया कि मैं श्रेष्ठ नहीं हूँ और चुपचाप शरीर में प्रविष्ट कर गयी।

आंखों से देखकर कौन वस्तु कहां है इसका ज्ञान होता है, पढ़ना-लिखना, चलना-फिरना होता है अतः आंखों को अहंकार हुआ कि इनमें हम सबसे श्रेष्ठ हैं और हमारे बिना ये सब बेकार हो जायेंगे ऐसा सोचकर आंखें एक वर्ष के लिए शरीर से बाहर निकल गयीं। एक वर्ष बाद लौटकर आयीं तब उन्होंने पूछा कि हमारे बिना तुम सब कैसे जीवित रहे?

इंद्रियों ने कहा—जैसे अंधा व्यक्ति न देखते हुए प्राण से सांस लेता, वाणी से बोलता, कानों से सुनता, मन से मनन करता-जानता और वीर्य से संतान पैदा करता है वैसे हम तुम्हारे बिना जीवित रहे।

यह सुनकर आंखों को अपनी वास्तविकता का पता चल गया और उनका धमंड दूर हो गया। फिर वे चुपचाप शरीर में प्रवेश कर गयीं।

कौन क्या कह रहा है, किसका क्या विचार है इसका ज्ञान कानों से सुनकर ही होता है अतः कानों को अहंकार हुआ कि सबसे श्रेष्ठ हम हैं। ऐसा सोचकर एक वर्ष के लिए वे भी शरीर से बाहर निकल गये। एक वर्ष बाद जब लौटे तब उन्होंने पूछा—हमारे बिना तुम सब कैसे जीवित रहे?

इंद्रियों ने कहा—जैसे कोई बहरा व्यक्ति बिना सुने प्राण से सांस लेता, वाणी से बोलता, आंखों से देखता, मन से जानता और वीर्य से संतान पैदा करता है, वैसे हम तुम्हारे बिना जीवित रहे।

यह सुनकर कानों का धमंड भी दूर हो गया कि हम श्रेष्ठ नहीं हैं और वे भी चुपचाप शरीर में प्रवेश कर गये।

हर बात-विचार का मनन-चिंतन मन से ही होता है अतः मन को अहंकार जगा कि मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। मेरे बिना ये सब बेकार हो जायेंगे, यह सोचकर वह भी एक वर्ष के लिए शरीर से निकल गया। एक वर्ष बाहर घूमकर जब लौटा तब उसने पूछा—मेरे बिना तुम कैसे जीवित रहे?

इंद्रियों ने कहा—जैसे पागल व्यक्ति किसी बात पर सोच-विचार न करते हुए प्राणों से सांस लेता, वाणी से बोलता, आंखों से देखता, कानों से सुनता और वीर्य से संतान पैदा करता है वैसे हम तुम्हारे बिना जीवित रहे।

यह सुनकर मन का भी अहंकार चूर हो गया और वह भी चुपचाप शरीर में प्रवेश कर गया।

वीर्य से ही मनुष्य संतान पैदा करता है और वंश-परंपरा चलती है अतः वीर्य को अहंकार जगा कि मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ, मेरे बिना ये सब बेकार हो जायेंगे। ऐसा सोचकर वह भी एक वर्ष के लिए शरीर से बाहर निकल गया। एक वर्ष बाद लौटकर आया तब उसने पूछा—मेरे बिना तुम सब कैसे जीवित रहे?

उत्तर मिला—जैसे नपुंसक व्यक्ति संतान न पैदा करते हुए प्राण से सांस लेता, वाणी से बोलता, आंखों से देखता, कानों से सुनता और मन से मनन करता-जानता है वैसे हम तुम्हारे बिना जीवित रहे।

यह सुनकर वीर्य का श्रेष्ठ होने का मद जाता रहा और वह चुपचाप शरीर में प्रवेश कर गया।

जब प्राण ने देखा कि सबने अपने-अपने बल की और श्रेष्ठ होने की परीक्षा कर ली तब उसने सोचा कि अब मैं इन्हें बता हूँ कि श्रेष्ठ कौन है। ऐसा सोचकर प्राण शरीर से निकलने लगा, फिर तो शरीर की सारी इंद्रियां अपनी-अपनी जगह पर रहते हुए निस्तेज एवं शक्तिहीन होने लगीं। सब व्याकुल हो गयीं और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगीं कि भगवन्! आप शरीर से न निकलिए, क्योंकि आपके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। आप ही हम सब में श्रेष्ठ हैं।

शरीर में हाथ, पैर, आंख, नाक, कान, जिह्वा, मन सबका महत्त्व है किन्तु सर्वाधिक महत्त्व प्राण का है, प्राण के बिना सब महत्त्वहीन एवं निष्प्रयोजन हैं। इसी प्रकार घर-परिवार, समाज, पार्टी आदि के छोटे-बड़े

सभी सदस्यों का अपना महत्त्व है और सबकी आवश्यकता है, परंतु सर्वाधिक महत्त्व उसका है जिसके न रहने पर घर-परिवार, समाज, पार्टी बिखर जाये।

अब प्रश्न यह होता है कि मनुष्य तो वह भी है जिसके निकल जाने पर घर-परिवार, समाज, पार्टी के अस्तित्व पर कोई असर नहीं पड़ता और मनुष्य वह भी है जिसके निकल जाने पर घर-परिवार, समाज, पार्टी का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है, उन्नति रुक जाती है, परिवार, समाज, पार्टी बिखरने लग जाते हैं। दोनों में इतना अंतर क्यों? इसका सहज उत्तर है जो केवल अपना स्वार्थ और हित देखता है, सेवा से जी चुराता है, विषयरस भोगी होता है उसके निकल जाने पर या न रहने पर परिवार, समाज, पार्टी के अस्तित्व, परिचालन एवं उन्नति में कोई अंतर नहीं पड़ता किन्तु जो निष्काम होकर सतत सेवापरायण होता है, निस्स्वार्थी होता है और स्व-हित के बदले समाज-हित को प्राथमिकता देता है, जो सेवा-साधना-कष्ट सहन करने में आगे होता है और सुविधा-भोग में पीछे रहता है उसके न रहने या निकल जाने पर परिवार, समाज, पार्टी का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है, उन्नति बाधित हो जाती है।

ऊपर के उपाख्यान में बताया गया है कि वाणी, आंख, कान, मन, वीर्य के निकल जाने पर शरीर के जीवित रहने में कोई बाधा नहीं होती, परंतु प्राण के निकल जाने पर तो जीवन की संभावना ही नहीं रह जाती। प्राण के श्रेष्ठ होने, बड़ा होने के पीछे यही रहस्य है कि अन्य इंद्रियां तो कुछ समय काम करके विश्राम ले लेती हैं तथा अपने-अपने विषयरस के भोगी और लालची होती हैं, परन्तु प्राण निरन्तर सेवारत गतिशील रहता है और उसे कोई विषय-रस की चाहना नहीं होती। इस विषय पर बृहदारण्यक उपनिषद् में ही एक और उपाख्यान दिया गया है।

असुर और देव दोनों प्रजापति की संतान थे। दोनों में परस्पर आगे बढ़ने की स्पर्धा थी। देवों ने सोचा कि हम प्रार्थना एवं उपासना द्वारा असुरों से आगे बढ़ जायें। अतः उन्होंने वाणी से कहा कि हमारी उन्नति के लिए

प्रार्थना करो। देवों का कथन मानकर वाणी प्रार्थना करने लगी और कहा कि मेरे सब कर्म-फल देवों को मिले, परन्तु उसने उनमें जो अच्छे कर्मफल थे, उन्हें अपने पास अपने उपभोग के लिए रख लिया। यह बात असुरों को पता चल गयी, अतः उन्होंने वाणी को पाप से विद्ध कर दिया। वाणी में जो झूठ का अंश है वह पाप है।

देवताओं ने नाक, आंख, कान, मन से भी अपनी उन्नति के लिए प्रार्थना करने को कहा। इन सबने भी देवताओं की उन्नति के लिए प्रार्थना तो की और यह कहा कि हमारे सारे कर्म-फल देवताओं को मिले, परन्तु सभी ने उनमें अच्छे-अच्छे फलों को अपने उपयोग के लिए रख लिया। अतः उनके स्वार्थपूर्ण कर्म के कारण असुरों ने उनको भी पाप से विद्ध कर दिया। नाक से बुरा सूंघना, आंखों से बुरा देखना, कानों से बुरा सुनना तथा मन से बुरा सोचना पाप है।

अंत में देवताओं ने प्राण से कहा कि तुम हमारी उन्नति के लिए प्रार्थना करो। देवताओं की बात मानकर प्राण ने उनकी उन्नति के लिए प्रार्थना की। असुरों ने सोचा कि इससे तो देवता आगे बढ़ जायेंगे, अतः उन्होंने प्राण को पाप से विद्ध करने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया परन्तु वे प्राण का कुछ नहीं बिगाड़ सके, बल्कि प्राण से टकराकर वे स्वयं नष्ट हो गये।

जो इस तथ्य को जान लेता है वह आत्मा से जुड़ जाता है और उसके शत्रु अपने आप परास्त हो जाते हैं।

इस उपाख्यान का सार यह है कि वाणी, नाक, आंख, कान और मन ने देवताओं अर्थात् सज्जनों एवं समाज की उन्नति के लिए प्रार्थना अर्थात् सेवा तो की, परन्तु व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण उनके अच्छे फल को स्वयं अपने लिए रखकर साधारण फल समाज को दिया। अतः असुरों ने उन्हें पाप से विद्ध कर दिया। अर्थात् व्यक्तिगत स्वार्थ-भावना ही पाप है, और इसी से मनुष्यों में एवं समाज में झूठ, छल-कपट, बुराइयां एवं गंदे विचार, गंदे आचरण बढ़ते हैं।

आंखें सुंदर-विलासी रूप चाहती हैं, जीभ स्वाद, नाक गंध, कान शब्द, त्वचा कोमल स्पर्श और मन

विषयरसपूर्ण विलासी संकल्प-विकल्प चाहते हैं, इसलिए वे पाप से ढंक जाते हैं, उनके कर्म पापपूर्ण हो जाते हैं, परन्तु प्राण कुछ नहीं चाहता। सभी इंद्रियां थोड़ा काम करके विश्राम चाहती हैं, परन्तु प्राण कभी विश्राम नहीं लेता, वह निरंतर चलता रहता है। यदि वह विश्राम करने लगे तो जीवन-लीला समाप्त हो जायेगी। प्राण सारे विषय-रस से रहित होकर निरन्तर सेवापरायण रहता है, इसलिए असुर उसका कुछ बिगाड़ नहीं सके।

जो स्वार्थी और विषय-रस का लालची एवं भोगी होता है उसका जीवन पाप से भर जाता है और वह सब समय दुखी बना रहता है, परन्तु जो निष्काम एवं निस्स्वार्थ भाव से सतत सेवापरायण रहता है, जिसका सब कुछ समाज-सेवा के लिए होता है उसके पास पाप फटक नहीं सकता और वह सब समय सुखी रहता है। निष्काम, निस्स्वार्थ एवं सेवापरायण के पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार मिट्टी का ढेला पत्थर से टकराकर चूरचूर हो जाता है।

जो महत्त्व शरीर में प्राण का है वही महत्त्व घर-परिवार, समाज एवं पार्टी में निष्काम, निस्स्वार्थ एवं सेवापरायण व्यक्ति का है। उसके संरक्षण एवं मार्गदर्शन में परिवार, समाज एवं पार्टी का बहुमुखी विकास होता है। स्वार्थ-भावना एवं स्वार्थ-क्रिया का सर्वथा त्याग करके ही अपना तथा समाज कल्याण का काम किया जा सकता है। निस्स्वार्थ एवं निष्काम भावना तथा सेवापरायणता के सामने बुरे विचार, बुरे कर्म एवं पाप टिक नहीं सकते।

जो प्राण के समान विषय-रस हीन, निष्काम एवं सतत सेवापरायण होता है वही सबसे श्रेष्ठ एवं बड़ा होता है। ऐसा व्यक्ति भव का भूषण होता है। ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता सब समय रही है, आज है और आगे रहेगी। आर्येण हम संकल्प लें कि हम प्राण के समान निस्स्वार्थी एवं निष्काम होकर अपना कल्याण करते हुए समाज-सेवा की दिशा में निरंतर प्रयत्नशील रहेंगे।

—धर्मन्त्र दास

अमृतवाणी

रचयिता—अरविन्द कुमार चौधरी

- जीवन एक पूजा है, श्वास लेना ही इसकी आहुति है। जीवन बहुत बड़ा है, यही तो है सबसे बड़ी भूल।
शुभ कर्म सुगंध है, प्राणियों को सुखी रखना विनती है॥ 1॥ आजकल के फेर में पड़, नष्ट हो गया समूल॥15॥
- सुख दुख में सदा सम रहना, यही तो असली तप है। प्रभु का नाम रटते रहो, मिट जायेगा सब गम।
शरीर को साध लेना, यही सर्वोत्तम जप है॥ 2॥ चिन्ता से कुछ नहीं होता, बढ़ता है केवल भ्रम॥16॥
- हार मानकर बैठ जाना, यह तो वीरों की रीति नहीं। हरि का सुमिरन करते रहो, काम क्रोध हट जायेंगे।
चलता रहे चन्द्र सूरज सा, जीवन की है रीत यही॥ 3॥ जीवन अच्छा हो जायेगा, और कष्ट सब मिट जायेंगे॥17॥
- दूसरों को कष्ट नहीं देना, खुद कष्टों को सह लेना। चिन्ता निराशा को मत सोचो, सोचो तुम ज्ञान को।
मानव हो आत्मा को समझो, मानवता का मार्ग यही॥ 4॥ एक भी क्षण व्यर्थ न जाने दो, पावोगे आतम राम को॥18॥
- जीवन भर रोते रहे, मर कर भी गये रोते। भक्ति-ज्ञान परम सुहावन है, मिट जाते हैं रोग-शोक।
ऐसा काश न होता, अगर तुम योगी होते॥ 5॥ भूला संसार मकड़जाल में, स्व को याद न किया पल एक॥19॥
- जीवन बदल जायेगा, पहले मन को बदलो। मायामोह भूल भुलैया है, इसमें भूल गया संसार।
आलस्य को दूर करो, अपने कर्मों को बदलो॥ 6॥ कहां से आये हैं कहां है जाना, कैसे लगेगा बेड़ा पार॥20॥
- क्षुद्रताएं सदैव आकर्षित करतीं, मन को रहती हैं बांधे। सुख-दुख, हानि-लाभयश-अपयश, जीवनके हैं विविध रूप।
मन भ्रमा करता है वासना में, प्रभु को कैसे आराधे॥ 7॥ सम रहना है इन सबमें, आते-जाते हैं जैसे छांव-धूप॥21॥
- योग साधना कठिन नहीं है, कठिन है मन का बंधन। हार कभी मानो नहीं, जीवन के कठिन संघर्षों में।
प्रयास सदा करते रहो, खत्म हो जायेगा हर बंधन॥ 8॥ विजय सदा मिला करती है, जो लगा रहा प्रयत्नों में॥22॥
- मन को बांधा नहीं जाये, बांधे नदी का नीर। मन के भावों में बहो नहीं, पग बाधाओं में डरो नहीं।
मन साधना अति कठिन है, जैसे बांधो समीर॥ 9॥ कठिनाइयां बन्दर घुड़की हैं, कदम तुम्हारे रुके नहीं॥23॥
- योग में मन लगा रहे, होकर परम स्वच्छन्द। भावनाओं का बहता सागर, नियन्त्रण करो बहो नहीं।
व्यवस्थित अभ्यास किया नहीं, तो दूर रहेगा आनन्द॥10॥ कमजोर बनो नहीं, दुर्बलता योगी की निशानी नहीं॥24॥
- भक्ति की विविध धाराओं में, दुविधा रही अनेक। दुनिया अजब दिखावा है, अन्दर कुछ तो बाहर कुछ।
एक निष्ठ हो नहीं पाये, जाग्रत कैसे हो विवेक॥11॥ लगता है दुनिया अपनी है, पर नहीं अपना है कुछ॥25॥
- भटक रहा है मानव, जब तक जाग्रत नहीं विवेक। मन को न करो उदास, हर सुख हर क्षण तेरे पास।
बुद्धि को ही बड़ा मान, जोड़ लिए रिश्ते अनेक॥12॥ अखण्ड आत्मानन्द का रस भरा है, पूरी होगी तेरी प्यास॥26॥
- रोता है इच्छा में पड़कर, घमंड है तन धन का। जीवन है सुन्दरता का खजाना, इसको है खुद से पाना।
सोच नहीं पाता है प्राणी, ये मेला है दो दिन का॥13॥ मन के भटकाव को रोको, सब जग हो जायेगा अपना॥27॥
- बल सौन्दर्य और जवानी, दो दिनों की है चांदनी। मानव जीवन अति दुर्लभ, सृष्टि का सर्वोत्तम रत्न।
शुभ कर्म यश और कीर्ति, मानव की है निशानी॥14॥ समय को गंवाओ नहीं, सदा करो उत्तम प्रयत्न॥28॥
- योगी जीवन अति सुन्दर है, सफलता का है सुन्दर मार्ग।
स्वास्थ्य सौन्दर्य सब मिल जाते हैं, योग है सर्वोत्तम कर्म॥29॥

दुश्मन कौन?

लेखक—नारायण दास

संसार में किसी से पूछा जाये कि आपका कोई दुश्मन है या नहीं तो कोई बिरला व्यक्ति मिलेगा जो कहेगा कि हमारा कोई दुश्मन नहीं है। नहीं तो प्रायः सभी कहेंगे कि अमुक व्यक्ति हमारा दुश्मन है।

आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन कोई है तो उसका अहंकार ही है। अहंकार ऐसा दुश्मन है जो आदमी की सुख-शांति को नष्ट कर देता है। कभी शांति तथा चैन से जीने नहीं देता है। सदैव भय, अशांति तथा पीड़ा देता रहता है।

जब अहंकार और स्वार्थ ज्यादा बढ़ जाते हैं तब निकट संबंधी भी विरोधी एवं दुश्मन प्रतीत होने लगते हैं। यहां तक पिता-पुत्र, भाई-भाई एवं पति-पत्नी के बीच दरार पड़ जाती है और लोग एक-दूसरे से बोलना तक छोड़ देते हैं। परस्पर का व्यवहार कटु हो जाता है।

अहंकार ऐसा दुश्मन है कि अपनों को पराया बना देता है। मित्र को दुश्मन बना देता है। अहंकार के वशीभूत होकर आदमी कई बार बड़ा-बड़ा अनर्थ कर डालता है। बाद में होश आता है तब पश्चाताप करता है। अहंकार से सिर्फ हानि होती है, लाभ कुछ भी नहीं। अहंकार से क्या-क्या हानि होती है कुछ बिन्दुओं पर विचार करें—

1. अहंकारी आदमी को सदैव अपना अपमान महसूस होता रहता है। अहंकारी आदमी सदैव अपने को दूसरों से बड़ा मानता है, ज्ञानी मानता है, योग्य एवं समझदार मानता है। सबका मालिक मानता है। जिसके कारण उसे सदैव लगता है कि लोग मुझे समझ नहीं पा रहे हैं। मेरी योग्यता के अनुसार मेरा सम्मान नहीं कर रहे हैं। मैं मालिक हूँ मेरी आज्ञा का लोग पालन नहीं कर रहे हैं, आदि बातों को सोच-सोचकर सदैव वह अपमान महसूस करता रहता है।

अपने आप को इतना बड़ा न मान लें कि सदैव अपमान महसूस करते हुए जीना पड़े। जो आदमी अपने आप को बड़ा मानता है उसे अपमानित होकर ही

जीना पड़ता है। आदमी को सदैव विनम्र होकर जीना चाहिए। मालिक होकर भी अपने आप को सेवक समझना चाहिए। अपनी योग्यता एवं पद का कभी अहंकार नहीं करना चाहिए। अहंकारी आदमी यह भूल जाता है कि पहले मैं एक इंसान हूँ। इसके बाद ऊपर से थोपा गया नाम-रूप हूँ। अपने आप को नाम-रूप से न जोड़े। यदि आदमी अपने आप को एक इंसान मान ले तो कभी अभिमान नहीं होगा और न अपमान महसूस होगा।

2. अहंकारी आदमी सबकी नजरों से गिर जाता है। उसे कोई पसन्द नहीं करता है। लोग उसे देखते ही अपना मुंह घुमा लेते हैं। उससे बात करना नहीं चाहते हैं। हर जगह वह अकेला पड़ जाता है। उसके साथ कोई रहना नहीं चाहता है। आदमी उसका संग-साथ कभी न हो ऐसा मनाता रहता है।

एक आदमी बड़ा अहंकारी था। हर क्षण अकड़कर ही बात करता था। वह जब भी अपनी पत्नी से, बच्चे से, माता-पिता से बात करता था तो बड़े रुवाब से। हर क्षण सबको डांटना, कटु कहना उसका स्वभाव बन गया था। परिवार वाले सदैव उससे परेशान रहते थे। एक दिन वह अपनी पत्नी से कहता है कि आज मित्र के घर में भोज है और मुझे आमंत्रित किये हैं। मुझे वहां जाना है। आज मैं नहीं आ पाऊंगा। कल सुबह ही आ पाऊंगा। पत्नी कहती है, इतनी जल्दी क्यों? बहुत दिन हो गये अपने मित्र के घर नहीं गये हैं। जाइये 2-4 दिन रह लीजियेगा, कहीं और घुमने की इच्छा हो तो चले जाइयेगा। जाइये 2-3 महीने में घूम कर आइये। वह आदमी अपनी पत्नी से कहता है, यदि मैं इतने दिन के लिए चला जाऊंगा तो तुम लोग मेरे बिना कैसे रहोगे। पत्नी कहती है जितने दिन आप घर से बाहर रहेंगे उतने दिन हम लोग बड़ी शांति से रहेंगे। बड़ा आनन्द महसूस होगा। चैन की नींद लेंगे। आप घर में

रहते हैं तो हम सबको डांटते रहते हैं। बात-बात में कटु कहते रहते हैं। आपको देखकर तो हम सब को लगता है कि आप जेलर हैं और हम सब कोई बड़े अपराधी हैं जिसके कारण हम सब जेल में बंद सजा भोग रहे हैं।

बंधुओ, जिस पत्नी को पति जेलर के समान लगे, जिस बच्चे को पिता जेलर के समान लगे वह कोई इंसान है? वह कभी पति, पुत्र, पिता बनने योग्य है? कभी नहीं। आदमी चाहे जितना बड़ा पद, अधिकार वाला क्यों न हो उसकी पत्नी को पति और पुत्र को पिता तथा पिता को पुत्र ही चाहिए। उन्हें उनके पद तथा अधिकार की आवश्यकता नहीं है। इसलिए पति को पति बनकर, पिता को पिता बनकर और पुत्र को पुत्र बनकर ही घर में रहना चाहिए। जिससे अहंकार का कभी जन्म ही न हो। जब आदमी अपने को पद और अधिकार से जोड़ लेता है तब उसे अहंकार आने लगता है फिर लोग उससे कटने लगते हैं।

3. अहंकारी आदमी अपने ही बन्धु-बान्धवों के दिल से बहुत दूर हो जाता है। आदमी को चाहिए कि अहंकार को त्यागकर अपनों को दिल से जोड़े। परन्तु आदमी अहंकार के पोषण के चक्कर में अपनों को दिल से दूर कर देता है। जिसके कारण दिल की दूरी लम्बी हो जाती है। एक बार अकबर ने राजसभा में प्रश्न किया कि सबसे लम्बी दूरी किसकी है? सभी सभासद अपने-अपने ढंग से जवाब दिये। किसी ने कहा—भारत से अमेरिका की दूरी लम्बी है, किसी ने कहा—पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी लम्बी है तो किसी ने सूर्य की दूरी लम्बी बताया। बीरबल चुपचाप बैठे थे। अकबर ने कहा—बीरबल, तुम कुछ नहीं बता रहे हो। तुम भी कुछ बताओ। बीरबल ने कहा—महाराज! दिल की दूरी सबसे लम्बी होती है। सभी सभासद एक दूसरे का मुंह देखने लगे। अकबर ने कहा—कैसे? बीरबल ने कहा—महाराज! जब पिता-पुत्र में, भाई-भाई में एवं पति-पत्नी में अनसुहाती बात हो जाती है, अनबन हो जाती है तो एक ही घर-परिवार में रहकर एक दूसरे से महीनों बात नहीं करते हैं। एक जगह नहीं बैठते हैं। साथ-साथ भोजन नहीं करते हैं। एक दूसरे से कुशल-

मंगल तक नहीं पूछते हैं। कितने तो जीवन भर के लिए कसम खा लेते हैं। भाई-भाई के बीच अनसुहाती बात हो जाती है तो वर्षों तथा जीवन भर के लिए मौन हो जाते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि दिल की दूरी बहुत लम्बी होती है। जितनी बड़ी अनसुहाती बात उतनी लम्बी दूरी होती है।

4. अहंकारी आदमी हजारों के बीच में रहकर भी सदैव अकेला ही रहता है। न उनके पास कोई जाता है और न उन्हें कोई अपने पास बुलाता है। न उनका कोई साथी तथा सहयोगी बनना चाहता है। वह कहीं बैठता है तो अकेला, काम करता है तो अकेला, घूमने जाता है तो अकेला। आदमी तुच्छ अहंकार को त्याग दे तो सबका प्यारा बन जायेगा। सांप देखने में बड़ा सुन्दर होता है। यदि उसमें विष न होता और काटता नहीं तो लोग उन्हें सदैव अपने पास में ही रखे रहते। परन्तु विष होने के कारण आदमी उसे देखते ही डर जाता है और उसे मार देता है। उसी प्रकार आदमी यदि अहंकार त्याग दे तो सब उसको गले लगा कर चलेंगे। परन्तु अहंकार होने के कारण सब उससे मुंह फेर कर चलते हैं। इसलिए अहंकार को पूर्ण रूप से त्याग देना चाहिए।

5. अहंकार कभी किसी का हित नहीं करता है। अहंकार आदमी का सर्वनाश करता है। कबीर साहेब ने कहा है—

अहंकार से तीन नशै, धन वैभव वंश।

अपनी आंखें देख लो, रावण कौरव कंश॥

रावण का विनाश क्यों हुआ? सिर्फ अहंकार के कारण। सभासदों ने आपस में मिटिंग करके रावण को सलाह दिया कि महाराज! सीता राम को सम्मानपूर्वक लौटा दिया जाये और राम से क्षमा मांग लिया जाये। इसी में आपकी और लंका की भलाई है। तब रावण ने अहंकारपूर्वक गरजते हुए कहा था कि मैं टूट सकता हूं, झुक नहीं सकता हूं। यह मेरा स्वभाव है। अन्त में परिणाम वही हुआ रावण सहित लंका टुट गयी। एक अहंकार ने रावण सहित उनके कुल को ही मिट्टी में मिला दिया। कुल में दीप जलाने वाला कोई नहीं बचा।

कौरवों का विनाश क्यों हुआ? सिर्फ अहंकार के कारण। शारीरिक बल, सैन्य बल तथा आर्थिक बल के अहंकार ने कौरवों को मिट्टी में मिला दिया। शर्त के अनुसार पांडवों के 12 वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करने के बाद भी दुर्योधन ने कहा—बिना युद्ध के सूई की नोक बराबर जमीन पाण्डवों को नहीं दूंगा। यह बात हस्तिनापुर के युवराज दुर्योधन नहीं उनका अहंकार बोल रहा था। बहुत मनाने के बाद भी वही हुआ जो दुर्योधन चाहता था—‘युद्ध’।

अहंकार कभी किसी की सुरक्षा नहीं करता है। सिर्फ विनाश की ओर ले जाता है। जिन्होंने धन का, पद का, बल का अहंकार किया उनका बहुत जल्दी ही पतन हुआ। कंस को भी अपने बल का बहुत अहंकार था। अपने पिता को ही जेल में डालकर राजा बना और मनमानी अत्याचार करना शुरू किया। अन्त में वे भी श्रीकृष्ण के द्वारा मारे गये।

एक बात और, अहंकार क्यों बढ़ता है? अहंकार बढ़ने के मुख्य तीन कारण हैं—

1. जब आदमी के पास धन बढ़ता है तब अहंकार बढ़ता है। तो क्या जितने धनी आदमी हैं सब अहंकारी ही होते हैं? सब नहीं होते हैं, कुछ बहुत सरल होते हैं। उनका जीवन बहुत सादगीपूर्ण होता है। परन्तु प्रायः धनी अहंकार होते हैं।

एक धनी आदमी एक कीमती चार चक्के की गाड़ी खरीद लिया। वह गांव में रोज तेजी से हार्न बजाते हुए दौड़ाता था सुबह-शाम। एक दिन एक बूढ़े ने उससे पूछा—भैया, तुम रोज गांव में इतनी तेजी से हार्न बजाते हुए क्यों गाड़ी दौड़ाते हो? तुम्हें गाड़ी सीखना है या दौड़ाने का शौक है तो कहीं मैदान में चले जाओ। कहीं बाहर जाना है तो आराम से चले जाओ। तुम गांव में क्यों दौड़ाते हो? उस आदमी ने कहा बाबा, मैं तो गाड़ी दौड़ाकर गांव वालों का दिल जला रहा हूं। बूढ़े ने कहा—बेटा! गांव वालों का दिल जलता है कि नहीं परन्तु तुम्हारा तेल जलता है। धनी अहंकारी होने का यही लक्षण है।

2. जब बल बढ़ता है तो अहंकार बढ़ता है— बलवान आदमी गांव में, समाज तथा परिवार में दूसरे पर सदैव धाक जमाये रहता है। लोगों को डांटना, कटु कहना, थोड़ी-थोड़ी बातों में पिटाई कर देना, जबरदस्ती दूसरे की चीजें हड़पना उसका प्रायः सहज स्वभाव बन जाता है। कमजोर लोगों को परेशान करता रहता है।

सब बलवान ऐसे नहीं होते हैं। कुछ लोग बल होते हुए भी विनम्र तथा सरल होते हैं। दूसरे को तकलीफ कभी नहीं देते हैं। बल्कि लोगों के सहयोग के लिए सदैव तैयार रहते हैं। यही मानवता है। बल सदैव एक समान नहीं रहता है। बड़े-बड़े बलवान आदमी एक दिन असमर्थ हो जाते हैं। यहां तक कि करवट भी बदलना मुश्किल पड़ता है। चाहे कितने ही बलवान क्यों न हो 8-10 बार लगातार दस्त हो जाये तो उसे उठकर चलना मुश्किल हो जाता है। इसलिए बल का कभी अहंकार नहीं करना चाहिए।

3. जब आदमी का पद बढ़ता है तो अहंकार बढ़ता है।

पद बढ़ना, आमदनी बढ़ना अच्छी बात है। परन्तु उसके साथ अहंकार बढ़ना गलत बात है। पद सेवा के लिए होता है। धन अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए होता है और बाकी तो औरों की सेवा में लगाना चाहिए।

अहंकार आदमी का बहुत बड़ा दुश्मन है जो आदमी को सदैव पतन की ओर ही ले जाता है। हर क्षण अपने अन्दर देखे किसी कारण अहंकार तो पैदा नहीं हो रहा है। जैसे ही अहंकार पैदा हो उसी समय विवेक से नष्ट कर देना चाहिए। उसे बढ़ावा नहीं देना चाहिए। सदैव सावधान रहे। जो आदमी अहंकार को नष्ट कर देता है उसके जीवन में अपने आप विनम्रता, कोमलता, सरलता आ जाती है। ऐसा आदमी सबको प्रिय हो जाता है। ऐसे आदमी को लोग बहुत सम्मान करते हैं। लोग उनका आदर्श लेते हैं। ऐसे आदमी के संसार से चले जाने के बाद भी लोग दिल से भूला नहीं पाते हैं। □

बिन सद्गुरु सब सून

लेखिका—श्रीमती रजनीश

सद्गुरु की खोज करने की जिज्ञासा किसी-किसी जीव को होती है। जो पूर्व जन्मों के दिव्य संस्कारी जीव हैं वे संत-सद्गुरु व सत्संगति पाने के लिए लालायित रहते हैं। यथार्थ ज्ञान से शून्य, इन्द्रिय-विलासिता को ही जीवन-लाभ मानने से, सत्संग, ज्ञान और सद्गुरु-शरण की श्रेष्ठता न समझने से सब मनुष्य गुरु-शरण नहीं ग्रहण कर पाते। जो भाग्यवान इसकी श्रेष्ठता को समझते हैं, वे ही ग्रहण करते हैं। जब सत्कर्म्मों का वेग अधिक होता है तब सारी बाधाएं अपने आप चकनाचूर हो जाती हैं।

“जब तक सद्गुरु न मिले, शुद्ध हृदय नहीं होय।
तब तक दुख छुट्टै नहीं, कोटि करै चहै कोय॥”

(विशाल वचनामृत)

1. गुरु और सद्गुरु में अन्तर—गुरु और सद्गुरु में बड़ा अंतर होता है। जो किसी विषय का ज्ञान कराता है वह गुरु है किन्तु जो आत्मतत्त्व का ज्ञान कराकर सारी भ्रांतियों को मिटा देता है, जिसके ज्ञान से आत्मशांति मिलती है, वह सद्गुरु है। सामान्य रूप से गुरु को सद्गुरु तथा सद्गुरु को गुरु कहा जाता है। गुरु किसे कहते हैं ? गु + रु अर्थात् अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला। गुरु निर्वाण की ओर ले जाता है। इसकी अनुभूति मन से होती है, जब ज्ञान प्रदीप्त हो जाता है।

“छाया था घनघोर अंधेरा, गहन और गंभीर।
गुरु मिलत ही छूट गई, भव बंधन की पीर॥”

गुरु शिष्य के अन्दर पड़ी हुई प्रसुप्त शक्तियों को जगाता है। उसका शुद्ध निर्मल स्वरूप बनाता है। माता-पिता, विद्या पढ़ाने वाले या कोई भी कलात्मक कार्य सिखाने वाले, ये सब गुरु हैं। गुरु बहुत होते हैं, परन्तु सद्गुरु केवल एक होता है। विवेक-वैराग्य सम्पन्न, दृढ़ विशाल, स्वच्छ, निर्मल व्यक्तित्व जो कभी चलायमान न हो, अचल, अडिग, शांत स्थिर हो, वे सद्गुरु हैं।

“संतों सो सद्गुरु मोहि भावै, जो आवागमन मिटावै।
डोलत डिगे न बोलत बिसरे, अस उपदेश दृढ़ावै॥”

(सद्गुरु कबीर साहेब)

“गुरु बोधित निज थीर पद, डोले कतहूँ नाहिं।

आप सुखी दूसर सुखी, सद्गुरु कहिये ताहिं॥”

(पंचग्रंथी)

उनके मिल जाने पर कुछ पाने की इच्छा नहीं होती। जैसे कस्तूरी मृग पूरे जंगल में घास सूघता फिरता है। कोई उसकी नाक पकड़कर उसकी नाभि में ही सूघा दे कि यह खुशबू तेरे ही अन्दर से आ रही है। इसी प्रकार जो मानव को बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी कर दे, यह दर्शा दे कि सारे सद्गुण तुम्हारे ही अन्दर विद्यमान हैं बस इनको जगाने की देर है, वही सद्गुरु है।

2. संत कृपा—संत सब पर कृपा करते हैं पर सच्चा जिज्ञासु ही उस कृपा को ग्रहण करता है। जैसे प्यासा आदमी ही जल को ग्रहण करता है। वास्तव में अपने उद्धार की लगन जितनी अधिक होती है, उतना ही वह उस कृपा को अधिक ग्रहण करता है। सच्चे जिज्ञासु पर सन्त कृपा अथवा गुरु कृपा अपने आप होती है। गुरु कृपा होने पर फिर कुछ बाकी नहीं रहता परन्तु ऐसे गुरु बहुत दुर्लभ होते हैं। एक कृपा होती है और एक दया होती है। दया में कोमलता होती है पर कृपा में थोड़ा शासन होता है। दया में शासन नहीं होता, केवल हृदय द्रवित हो जाता है। हृदय द्रवित होने से ही शिष्य का काम हो जाता है।

पारस पत्थर कहीं नहीं होता है लेकिन इसके माध्यम से समझने में बड़ी सरलता होती है। कहते हैं कि पारस से लोहा सोना बन जाता है पर उस सोने में यह ताकत नहीं होती कि दूसरे लोहा को सोना बना दे। परन्तु असली गुरु मिल जाये तो उसकी कृपा से चेला भी गुरु बन जाता है।

“पारस में अरु संत में, बड़ो अंतरो जान।
वह लोहा कंचन करे, वह करै आपु समान॥”

हम सदगुणों द्वारा स्वयं का उद्धार करते हैं, दुर्गुणों द्वारा स्वयं ही अपना पतन करते हैं। हम आप ही अपने मित्र हैं और आप ही अपने शत्रु हैं। जिसके भीतर अपने उद्धार की लगन होती है वह किसी जगह अटकता-फंसता नहीं। सच्चे जिज्ञासु को सच्चा सत्संग मिल जाये तो वह उसको चट पकड़ लेता है।

‘बिनु सत्संग विवेक न होई’।

3. रहनी सम्पन्न संत ही भगवान स्वरूप हैं—
‘नारद जी से संबंधित एक प्रसंग है। एक बार राजा अम्बरीष ने नारद जी से पूछा—पूजा के लिए भगवान को कौन से फूल पसंद हैं?’

नारद जी ने कहा—‘राजन, भगवान को आठ प्रकार के फूल बहुत पसंद हैं। जो उन फूलों से भगवान की पूजा करता है, भगवान उसके हृदय में प्रकट हो जाते हैं और भक्त को अपने में मिला लेते हैं। ये फूल बाहर किसी बगीचे में नहीं किंतु मन के बगीचे में खिलते हैं।

राजा अम्बरीष ने कहा—‘महामुनि, उन आठ फूलों के नाम बताइए।’ नारद जी ने कहा—‘वे आठ फूल हैं—इंद्रिय निग्रह, अहिंसा, निर्दोष प्राणियों पर दया, क्षमा, मनोनिग्रह, ध्यान, सत्य का पालन और श्रद्धा।

जो शुभ संस्कारी जीव हैं, जिन पर सदगुरु की पूरी-पूरी दया-दृष्टि हो गई है उसी के बगीचे में ये फूल खिलते हैं। शिष्य का कर्तव्य है कि वह सत्संग, श्रद्धा व भाव-भक्ति के जल एवं खाद से इन्हें आजीवन सींचता रहे। हृदय रूपी धरती भाव व श्रद्धा के जल से नम रहनी चाहिए जिससे ज्ञान के बीज प्रस्फुटित हो सकें। जैसे भूमि चाहे कितनी भी उपजाऊ क्यों न हो उससे फसल पाने के लिए जल चाहिए ही चाहिए। निरंतर सिंचाई से ही सदगुणों की हरियाली एवं ताजगी बनी रहेगी। हरियाली एवं ताजगी रहने से सुगंध तो अपने आप फैल जायेगी।

4. शिष्य की विनम्रता—

“दया दृष्टि गुरु की रहै, मन गुरुपद में प्रेम।
गुरु आज्ञा पालूँ सदा, भक्ति भाव सत नेम॥”

(पारख विचार सदग्रन्थ)

“सद्गुरु उपदेश ग्रहण, सकलो जाल विनाश।

बन्धन मन माया मिटा, भास कल्पना नाश॥”

शिष्य को यदि सच्चे सदगुरु मिल जायें तो उनके संसर्ग से उसका मूल्य बढ़ जाता है। जिस प्रकार सच्चे मोती का संसर्ग पाकर धागा भी कीमती हो जाता है। नहीं तो धागे का स्वयं का क्या मूल्य। धागा मोती के सम्पर्क से माला बनता है। वह माला न जाने किस-किस के गले में सुशोभित होती है। इसी प्रकार शिष्य सच्चे सदगुरु का संसर्ग पाकर सत्संग रूपी धागे में सदगुण रूपी मोतियों की माला बनाता है। जो सत्यज्ञान के इच्छुक जिज्ञासु जीव हैं वे इस माला को धारण करते हैं। इस माला से भीतर के कंठ का सौंदर्य निखरता है। मिष्ठ वाणी, सद्ज्ञान, गुरुभक्ति, विवेक-वैराग्य और भी अन्य सदगुण निखर उठते हैं।

बिना गुरु के शिष्य चाहे कितना भी ज्ञानी-ध्यानी क्यों न हो वह ‘उजाड़े के फूल’ के समान है “जैसे फूल उजारि का, मिथ्या लगी झरि जाई।”

भक्ति के साथ सत्संग भी जरूरी माना गया है। हींग और कपूर में फर्क करना जरूरी है। हम हींग से कपूर की आशा नहीं कर सकते। सत्संग किया तो सदगुण शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की तरह बढ़ने लगते हैं। कुसंग किया तो सदगुण कृष्ण पक्ष के चंद्रमा की तरह निरंतर घटते चले जाते हैं और अंत में सामने आती है—अमावस्या। लोक जीवन की एक सूक्ति है—

“संगति अच्छी बैठिए, खैये नागर पान।

खोटी संगति बैठ के, कटे नाक और कान॥”

यदि शिष्य को सच्चे सदगुरु मिल जायें तो उसकी उसी प्रकार प्रतिष्ठा बढ़ जाती है जिस प्रकार मलयगिरि के वृक्ष के आस-पास के वृक्ष भी सुगंधित प्रतीत होते हैं।

5. सदगुरु का ज्ञानरंग—“आई सत्संग में भिगोई हरि रंग में, जागे म्हारे भाग सतगुरु ने ली संग में।”
(मीरा) ज्ञान का रंग जिस पर चढ़ जाता है उस पर

कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ता। संसारी लोग कृत्रिम रंगों से होली खेलते हैं जो कुछ क्षण के पश्चात मिट जाते हैं। लेकिन सद्गुरु द्वारा दिया गया ज्ञान-रंग अमिट होता है। यह रंग जिन पर चढ़ गया है वे ही इसके महत्त्व को भली-भांति जानते हैं।

“सद्गुरु हैं रंगरेज चुनर मोरी रंग डारी।
स्याही रंग छुड़ाय कै रे दियो मजीठा रंग
धोये से छूटे नहीं, दिन दिन होत सुरंग॥”

(कबीर साहेब)

आत्मज्ञान के रंग का भेद सद्गुरु बिन कौन बतावै। भाव-भक्ति, प्रेम व वैराग्य से यह कार्य सम्पन्न होता है।

“सत के धनी हो मेरी रंग दो चुनरिया। ऐसे रंगो मेरे दाता रंग नहीं छूटे, धोबी तो धोवै चाहे सारी उमरिया। ये चुनरी तो मैं लेकर ही जाऊंगी चाहे बीत जाए सारी उमरिया॥” (कमाली)

‘सतगुरु ने आण जगाई हे सखी! मैं तो भ्रम-भूल में सो रही थी।’ (मीरा)

हे भाई-बहनो, हम भी अपनी चुनरी इन सात रंगों में रंग लें—

1. सफेद—सच्चाई व शुद्धता में अडिग रहूं।
2. लाल—क्रोध से दूर रहूं।
3. नीला—गहरी आत्मिक शांति पाऊं।
4. पीला—स्वयं भी प्रसन्न रहूं व सभी प्राणी प्रसन्न रहें, यह मंगल कामना करूं।
5. हरा—स्वयं के कल्याण के साथ-साथ सबके लिए मंगलकामना करूं।
6. काला—बुराइयों व दुष्टों से दूर रहूं।
7. गुलाबी—गुलाब के फूल की तरह पारख ज्ञान से हमारा मन सदैव खिला रहे।

सद्गुरु ज्ञान-रंग के बाद भक्ति की युक्ति पर प्रकाश डालते हैं। मानस में श्री रामचन्द्र जी गुरु रूप होकर शबरी को भक्ति की युक्ति सिखा रहे हैं। ये भक्ति युक्ति अन्य जिज्ञासुओं के लिए भी अत्यन्त कल्याणकारी सिद्ध होगी।

6. भक्ति की युक्ति—सचमुच “भक्ति बिना सब सुख हैं कैसे। लवण बिना बहु व्यंजन जैसे॥”

पहली भक्ति—संतों की संगत है। सचमुच निर्मल संतों की संगत से ही जीवों का कल्याण है।

दूसरी भक्ति—कथा प्रसंगों में प्रेम करना है।

तीसरी भक्ति—निर्मानतापूर्वक गुरु के चरण-कमलों की सेवा करना है। यह बात भी अवश्य है कि “गुरु करै जानि कै, पानी पीये छानि कै”।

चौथी भक्ति—कपट त्याग कर सद्गुरु का गुणगान करना है।

पांचवीं भक्ति—सद्गुरु में दृढ़ विश्वास करना है।

छठीं भक्ति—इन्द्रियों का दमन, शील, बहुत कर्मों से वैराग्य तथा सदैव सज्जन धर्म में प्रेम करना है।

सातवीं भक्ति—संसार के चलते-फिरते समस्त प्राणियों को रामस्वरूप समझें। यदि सन्त मिल जाएं तो उन्हें राम से भी बड़ा समझें।

आठवीं भक्ति—यथाप्राप्त में सन्तोष और स्वप्न में भी पराये का दोष न देखना।

नवीं भक्ति—नम्र रहें, सबसे छल-कपट रहित, सद्गुरु में दृढ़-विश्वास, हृदय में न हर्ष हो न शोक।

ये भक्ति जिनके हृदय में विराजती हैं वे मनुष्य धन्य हैं।

सद्गुरु प्रेम—

“यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस काटि भुईं पर धरे, तब पैठे घर मांहिं।”

(सद्गुरु कबीर साहेब)

“जो प्रेम नगर में रहते हैं, उन्हें बावरा-बावरा कहते हैं जो ताने जग के सह न सके, वो सतगुरु से प्रीत लगाए क्यों? सतगुरु से जो प्रेम निभा न सके, वो इष्ट देव अपनाए क्यों?”

आइए हम अपनी भक्ति में प्रेम, मोह व आसक्ति की मात्रा जांच लें।

मोह—मोह में सड़ांध होती है क्योंकि उसमें स्वार्थ व सूक्ष्म वासना छिपी होती है।

प्रेम—प्रेम व्यापक होता है। प्रेम में ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की भावना होती है। प्रेम में सुगंध होती है क्योंकि इसमें सबके कल्याण की भावना होती है।

आसक्ति—अपने गुरु को अपने पास ही रखना चाहते हैं। गुरु शारीरिक रूप से न सही लेकिन आत्मिक रूप से ज्ञान के माध्यम से सदैव सत्शिष्य के पास ही होता है। इसमें भी तेल में जलवत सूक्ष्म आसक्ति विद्यमान है। तेल में जल की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी ही चड़-चड़ की आवाज अधिक होगी। जब जल सूख जायेगा तब तेल में आवाज नहीं आयेगी। इस प्रकार जब सूक्ष्म आसक्ति भी मिट जायेगी तब बचेगा केवल शुद्ध, निर्मल प्रेम। बस ऐसा होते ही नैया पार ही समझो।

“मुक्ति पदारथ सतगुरु दे दो आप तिरै औ तारै जी,
डूबत-डूबत सतगुरु मिल गए बइयां पकड़ उबारै जी।”
(संत रविदास जी)

सारांशत : सद्गुरु की महती आवश्यकता—
“गुरु बिन मुक्ति न होएगी रे मन चंचल भाई।” कोई कहे पुस्तकें पढ़ने से ही हम लाभ ले लेंगे, गुरु की क्या आवश्यकता? वे गहरी भूल में हैं। स्वाध्याय का अपना महत्त्व है लेकिन गुरु का महत्त्व सर्वोपरि है। इस संसार में सद्गुरु से बढ़कर कुछ भी नहीं। “सब देवों में सद्गुरु देवा, सबसे ऊंची गुरुजी की सेवा।” यह सत्य है कि जब हम स्वाध्याय द्वारा निर्णय वचन स्वयं के अंदर डालते हैं तब नकारात्मक विचार गल-गल कर नष्ट होने लगते हैं और फिर सकारात्मक एवं स्वस्थ विचारों का जन्म होने लगता है जो कि प्रगति का मार्ग है। निःसंदेह स्वाध्याय मन का स्नान है।

आज तक दुनिया में जितने भी संत हुए हैं सभी ने गुरु के महत्त्व को स्वीकारा है। जिनका हृदय सद्गुरु के शब्द-बाण से बिंध गये हैं उनके हृदय से ज्ञान की अजस्र धारा प्रवाहित होने लगती है। गुरु के महत्त्व को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं—जैसे किसी व्यक्ति ने अनेक लोगों के सहयोग से एक गाड़ी का निर्माण किया। किसी ने कोई पुर्जा लाकर दिया, किसी ने कोई पुर्जा। इस नट, बोल्ट व अन्य सामान की सहायता से गाड़ी तो बन गई। लेकिन ‘ड्राइविंग’ कहां से सीखेंगे? इसको चलाना सीखने के लिए किसी कुशल ड्राइवर की आवश्यकता पड़ेगी। वे इसके सभी ‘रूल’ समझाते हुए ड्राइविंग सिखायेंगे तभी तो सीख

पायेंगे। वाहन चलाना सिखाने वाले संसार में अनेक व्यक्ति मिल जाएंगे लेकिन ‘जीवन’ को कैसे ‘ड्राइव’ किया जाता है इसका भेद बिना सतगुरु के कोई नहीं जानता। इसमें स्वयं का प्रयास तो शामिल है ही।

गुरु के महत्त्व का वर्णन करते हुए कबीर साहेब ने कहा है—

“गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु में भाव।
सद्गुरु सोई बन्दिये, जो शब्द बतावै दाव।”
“सब धरती कागज करूँ, लेखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय॥”

(सद्गुरु कबीर)

“प्रत्यक्ष देव साधु गुरु मान, मान महातम भरम भुलान।
जा मुख निर्णय लखे विशेष, ते गुरु सम न और कोई लेख॥”

(पंचग्रन्थी)

अंत में—

अब आदि से अन्त तक दाया तुम्हारी न भूलूं।
उपकार तव नित याद रहि मन शत्रु से फिर न शुलूं।
गुरुदेव पारख बोध महिमा श्रवण मनन निशि दिन करूं।
वरदान यहि गुरुदेव मोहिं तव मोक्ष फल दिल में धरूं।
(गुरु पारख बोध)

जो लोग जीव से अलग शिव, आत्मा से अलग परमात्मा भगवान मानते हैं वे भी कहते हैं कि भगवान ने माया में जीव को उलझा दिया है। परन्तु गुरु जीव को माया-बन्धन से छुड़ाने वाला है। गुरु माने गये भगवान से अधिक श्रेष्ठ क्यों हैं, इस पर श्री सुन्दरदास जी एक सुन्दर कविता कहते हैं—

गोविन्द के किये जीव जात है रसातल काँ,
गुरु उपदेशे सुतौ छूटै जम फंद तें।
गोविन्द के किये जीव सब परें कर्मनि कै,
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छन्द तें॥
गोविन्द के किये जीव बूड़त भवसागर में,
सुन्दर कहत गुरु काढ़े दुख द्वन्द तें।
और ऊ कहाँ लौं कछू मुखतें कहाँ बनाइ,
गुरु की महिमा अधिक है गोविन्द तें॥

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

कोई तुम्हें क्या कहता है, इसका कोई मूल्य नहीं है। तुम कैसे हो, इसी का महत्त्व है। सब तरफ से सिमिटकर अपने मन को अंतर्मुख कर लो और अपने आप में सदैव लीन रहो। क्या मिला, क्या छुटा, कौन आदर किया, कौन निरादर किया, कहां क्या पाया, क्या खोया, इन बातों में क्या रखा है? तुम्हारा मन बाह्य चिंतन में लगा रहता है कि आत्मचिंतन में डूबा रहता है, इस अंतर को समझो। यदि बाहरी चिंतन में डूबा है तो भयंकर हानि है, यदि आत्मचिंतन में डूबा है तो महालाभ है। याद रखो, तुम्हारा कुछ और कोई नहीं है। तुम्हारा तो अपनी दिव्य स्वरूपस्थिति है जो परम शांति और परमानंदमय है, स्थिर और शाश्वत सुख है।

* * *

जीव बहिर्मुख होकर दुखी है। वह जब पूर्णरूपेण अंतर्मुख होता है तभी उसे पूर्ण शांति मिलती है और पूर्ण शांति ही जीवन की सफलता है। यह शरीर और संसार दुखों से भरा हुआ है। इसमें रहकर उसी को सफलता मिली हुई मानी जायेगी जिसके मन में गहरी शांति है। जड़-पदार्थों का अहंकार और कामना छोड़ देने पर शांति स्वयमेव आ जाती है। अंततः किसी का कुछ नहीं रह जाता है। इस तथ्य को जो सब समय समझता है, वह सब समय शांति में विहरता है।

* * *

सब कुछ तो क्षणिक है। बीती बातों की याद मत करो, आगे की कल्पना न करो, वर्तमान में भी भोगों की इच्छा न करो। अपने मन को बाहर से समेटकर अंतर्मुख रहने का अभ्यास करो। उद्वेगित मत होओ। सदैव शांत रहने की साधना में रत रहो। जितना प्राणी,

पदार्थ और परिस्थितियों का प्रवाह सामने दिखता है, वह भागकर कहां चला जायेगा, इसका तुम्हें पता भी नहीं चलेगा। ज्यादा दूर की बात छोड़ दीजिए, अति निकट माना गया यह शरीर ऐसा खो जायेगा कि इसका पता भी नहीं चलेगा। याद रखो, तुम्हारे साथ केवल तुम हो। अतएव आत्मनियंत्रण, आत्मचिंतन, आत्मविश्वास और आत्मरति में ध्यान दो।

* * *

पास के अथवा दूर के लोगों में से किसका मन तुम्हारे लिए कैसा है इसका कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारा मन कैसा है, इसका मूल्य है। तुम अपने मन को इस संसार-कचड़े से ऊपर और अंतर्मुख रखो? तुम्हारा पूर्ण अधिकार तुम्हारा अपने आप पर है। तुम अपने को शोधो, अपने आप में रमो। पीछे के जीवन-हिस्से को देखो, कब-कब कौन मिला, क्या भाव रखा, अब कहां गया? जरा, इस संसार-धारा को ठीक से देखो। कुछ स्थिर नहीं है। तुम अपने आप में स्थिर रहो। यही तुम्हारी विशेषता होगी। कौन, कब, कितना ऊंचा-नीचा सोचता है, इससे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हारा मन सब समय शुद्ध और शांत रहना चाहिए।

* * *

जो जीव शरीर छोड़कर चला गया उसका इस संसार में कुछ नहीं रह गया। इसी प्रकार हम सबका भी है। जीव मिथ्या अहंकार करके शरीर तथा शरीर संबंधी प्राणी-पदार्थों में हम-हमार करता रहता है जो उसका घोर अविवेक है। हमें चाहिए कि सब समय सब जगह आत्मा में ही रमन करें। आत्मचिंतन, आत्मानुराग और आत्मस्थिति ही सच्चा सुख है। इसी साधना में रहकर जीवन में परम शांति है और मृत्यु भी शांतिपूर्वक होना संभव है और मृत्यु के बाद भी इसी का फल सुरक्षित, उपद्रव रहित अविचल शांति स्थिति है।

* * *

जब देह हरक्षण निरर्थक लगने लगती है, तब अपने आत्मिक स्वराज्य का अनुभव होता है। आज-

कल में यह अपना माना हुआ शरीर मुरदा होकर जमीन पर पड़ा रहेगा। फिर इसे लोग जमीन खोदकर उसमें पाट देंगे, पानी में फेंक देंगे, आग में जला देंगे या कहीं जमीन पर पड़ा रहकर श्वान-सियार का भोजन हो जायेगा। इस देह की सार्थकता है स्वस्वरूप चेतन को सबसे असंग, अकेला, केवल, निर्मल, पूर्णकाम, आप्तकाम, निष्काम, अखंड, दुखहीन समझकर अपने आप में मस्त हो जाना। देह की निरर्थकता का निरंतर बोध जीवन्मुक्ति का परमानंद अनुभव कराता है। फिर ऐसा साधक बाहरी विषयों के संबंध में नहीं सोचता। वह सब समय स्वयं में लीन रहता है।

* * *

समय सुनहला है। स्वास्थ्य ठीक है। प्रकृति का सहयोग है। स्वरूपबोध मिला है। संतों का सहयोग है। सद्गुरु की कृपा का वरदान मिला है। अतएव सारा दृश्य-मोह छोड़कर अपने आप में शांत रहने का काम करना चाहिए। मन देह पर नहीं आत्मा पर टिकाना चाहिए। यही शांति का पथ है। शरीर पर चित्त टिकाने वाला सांसारिक कामनाओं में उलझकर बीच में ही रुक जाता है। वह अपने गंतव्य स्वरूपस्थिति में नहीं टिक सकता। आज-कल में न यह शरीर रहेगा, न यह प्राणी-पदार्थों की भीड़ रहेगी। अचानक सारा दृश्य खो जायेगा। इसलिए जड़-दृश्य में मन नहीं लगाना चाहिए। संसार की सारी कामनाएं छोड़कर रहने वाला आत्मसंतुष्ट रहता है।

* * *

तुम्हें भोजन मिलता है, वस्त्र मिलते हैं और रहने-बसने और सोने के लिए जगह मिलती है। अब सोचो, इनके अलावा तुम्हें क्या चाहिए! क्या साधियों से सम्मान, चाटुकारिता, सत्कार तुम्हें मिलना चाहिए? इन्हीं बातों के लिए तो सब समय गुलाम बने रहे किंतु कभी मन तृप्त नहीं हुआ। याद रखो, असन, वसन और निवसन के बाद तुम्हें एक ही वस्तु चाहिए, और वह है

निर्विकल्प-समाधि। सारे द्वन्द्वों का अंत उसी में है। तुम अनादि काल से, पांचों विषयों के भोग, सम्मान, पद, प्रतिष्ठा के भूखे रहकर संसार में अभाव का अनुभव करते हुए बिलबिलाते हुए भटकते रहे? समाधि में ही शांति मिलेगी। मृत्यु महासमाधि है। उसके पहले प्रगाढ़ता से निर्विकल्प समाधि में रहो।

* * *

मिथ्या वस्तुओं में विवेकवान अपना मन नहीं लगाते। शरीर से लेकर संसार का जितना संबंध होता है, सब मिथ्या है। मिथ्या का अर्थ है व्यर्थ, न रह जाने वाला। शरीर नरक है और इसमें उठने वाले मनोविकार नरक हैं। इन्हीं में जीव ऊबते-डूबते और सदैव बहते हैं। इनकी दुखरूपता, गंदगी, निरर्थकता, मिथ्याभाव निरंतर देखने वाला इनसे मुक्त हो जाता है। इस गंदे शरीर के नाम-रूप की निंदा-प्रशंसा, तिरस्कार-सत्कार, अपमान-सम्मान का क्या महत्त्व है। महत्त्व है सबसे सब समय विरक्त रहना। इस कूड़ेदान शरीर-संसार का मोह छोड़कर सदैव अपने ज्ञानस्वरूप निर्मल आत्मा में लीन रहने का काम ही महत्त्वपूर्ण है।

* * *

दुख कब आता है? जब मन में अहंकार और कामना का उदय होता है। पूर्ण शांति चाहने वाले को चाहिए कि वह अहंकार और कामना का सर्वथा परित्याग कर दे। देह धूल है, तब किस वस्तु का अहंकार और किस वस्तु की कामना? शरीर-निर्वाह सहज चल रहा है। उसके बाद तो एक ही काम है, केवल मन को अहंकार और कामना से रहित रखना। आज-कल में शरीर छोड़ देना है, फिर साथ में क्या रह जायेगा। सुविधा और असुविधा जीवन में लगी रहती है। उसका अधिक महत्त्व नहीं रहता है। महत्त्व है कि मन कितना अहंकार तथा कामना से हीन है। यदि मन पूर्ण निष्काम और निर्मान हो गया, तो यही जीवन्मुक्ति है। □

नीम का पेड़

लेखक—श्री लखन प्रतापगढ़ी

धर्मपुरी कालोनी का निर्माण अभी कुछ ही वर्ष पहले हुआ था। इसे सेठ धर्मचन्द्र के बेटे मनमोहन ने बड़ी सूझबूझ से बसाया था। हर घर के सामने पक्की सड़क व नाली की उत्तम व्यवस्था थी। सड़क के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगे थे। पानी, बिजली आदि की सुविधाएं उपलब्ध थीं। कालोनी में धर्मानुरागियों के लिए मन्दिर का निर्माण कराना, मनमोहन जी ने अपना परम दायित्व समझा था। आगे भी बहुत कुछ करने की उनकी योजना थी जैसे बच्चों के खेलने के लिए पार्क बनवाना एवं चौराहों पर हाई मास्ट लाइट लगवाना आदि।

प्रोफेसर ज्ञान मलहोत्रा को यह कालोनी पहली ही नजर में जम गयी। वे महाराजा डिग्री काजेज में बॉटनी विभाग के हेड थे। उन्हें ऐसी ही हरी-भरी कालोनी की तलाश थी, सो मिल गयी। अतः उन्होंने एक अच्छा-सा प्लॉट लेकर मकान बनवाया और सपरिवार रहने लगे।

प्रो. साहब विज्ञान के आदमी थे। धर्म-कर्म के बजाय उनकी दिलचस्पी पेड़-पौधों में अधिक थी। वृक्षों के जीवन पर उन्होंने कई शोध किया था। वे प्रति वर्ष अपने कालेज के कैम्पस में सैकड़ों पेड़ लगवाया करते थे। पेड़-पौधों में ही उनकी जान बसती थी। उन्हें वे अपना मित्र मानते थे।

एक दिन प्रो. साहब अपने घर के बरामदे में बैठे अखबार पढ़ रहे थे कि उनके पड़ोसी डॉ. संजीव सक्सेना जी चहलकदमी करते हुए वहां आ गये। वे दूर से ही अभिवादन करते हुए बोले, “और बताइये प्रोफेसर साहब! यह कालोनी आपको कैसी लग रही है। आप अभी-अभी रहना शुरू किये हैं, कोई परेशानी हो तो बताइये।”

“आप जैसे शुभचिन्तक पड़ोसी के रहते भला मुझे क्या परेशानी हो सकती है, डाक्टर साहब! आइये

तशरीफ लाइये।” इतना कहते हुए प्रो. साहब ने सामने रखी कुर्सी का मुंह उनकी ओर घुमा दिया।

सक्सेना जी कुर्सी पर आसन जमाते हुए बोले, “प्रोफेसर साहब, यह कालोनी क्षेत्र की आदर्श कालोनी है। यहां सारी सुविधाएँ उपलब्ध है। यहां की हरियाली और आधुनिक वेरायटी के वृक्ष कालोनी की पहचान हैं।”

प्रोफेसर साहब ने सक्सेना जी को बीच में ही रोकते हुए कहा, “सक्सेना जी! आधुनिक वेरायटी के पेड़ मात्र देखने भर के होते हैं। इनका फल-फूल किसी काम का नहीं होता। एक जमाना था जब लोग आम, महुआ, नीम, पीपल, बरगद आदि लगाया करते थे। उनके फल-फूल तथा लकड़ियां सब उपयोगी हुआ करते थे। पर्यावरण भी शुद्ध रहता था। अनेक औषधियां भी उन्हीं से मिल जाया करती थीं किन्तु आज ...।”

प्रो. साहब और सक्सेना जी के बीच पेड़-पौधों पर एक लम्बी वार्ता हुई। प्रोफेसर साहब पुराने वृक्षों के शौकीन थे। उसी दिन वे शहर गये। वहां की नर्सरी से एक नीम का पौधा लाये और उसे अपने घर के सामने रोप दिये। वे नीम के औषधीय गुणों से भलीभाँति परिचित थे। अतः यह पेड़ उन्हें अत्यन्त प्रिय था।

प्रोफेसर साहब की देखरेख में नीम का पौधा दिन दूनी रात चौगुनी गति से विकास करने लगा। अभी चार महीने भी नहीं हुए थे कि उसमें टहनियां निकल आयीं। उसका विकास देखकर प्रो. साहब गदगद थे। उन्हें वही खुशी मिल रही थी जो एक पिता को अपने नन्हें पुत्र का विकास देखकर मिलती है।

उधर कालोनी की औरतें भी खुश थीं। कालोनी में अभी तक नीम का कोई पेड़ नहीं था। उन्हें शीतला

मइया को जल चढ़ाने दूर जाना पड़ता था। अब यह समस्या दूर हो गयी थी। नीम का पेड़ पूरी कालोनी में चर्चा का विषय बन चुका था। मन्दिर में शाम को औरतें इकट्ठे होतीं तो नीम के पेड़ की चर्चा जरूर करतीं।

एक दिन आरती के बाद लल्ली बुआ ने बात छेड़ ही दी। उन्होंने मिसिराइन काकी से कहा, “काकी! अब तीज त्योहार मा हमका जल चढ़ावइ दूर न जाई का पड़ी। कलोनी मा नीम का पेड़ अबही तक नाहीं रहा लेकिन डिगरी कालेज वाले प्रोफेसर साहब अपने दरवाजे पर लगाय देहेन।”

“सच्च! लल्ली इतौ बहुतय अच्छा भवा। देवी मइया प्रो. साहब का बहुतय आशीर्वाद देइहैं।” मिसिराइन काकी ने कहा।

दोनों की बात सुन कर सविता भाभी कहां पीछे रहतीं वे बोल पड़ीं, “इतौ बड़ा अच्छा काम किये प्रोफेसर साहब, जवन मोहल्ले मा नीम का पेड़ लगाएन। अब देवी मइया का जल चढ़ावे दूर न जाय का पड़े।”

प्रो. साहब को कालोनी की महिलाओं की गतिविधियों से कोई लेना-देना नहीं था। वे खुश थे कि पेड़ बड़ा होकर छाया देगा। वातावरण शुद्ध रखेगा। इसकी निमकौर से अनेक दवाइयां बनेंगी।

अब कालोनी की दर्जनों महिलाएं सुबह-सुबह इस पेड़ में देवी मइया को जल चढ़ाने आने लगीं। वे आपस में जोर-जोर से हंसी-मजाक, हहा हीही करने से न चूकतीं। घरेलू सूचनाओं के आदान-प्रदान का उनको यहां अच्छा अवसर मिल जाता। उनका शोरगुल और बेढंगी बातें प्रो. साहब को बुरी लगतीं, किन्तु वे यह सोचकर चुप रहते कि चलो इसी बहाने पेड़ की सिंचाई हो जाती है। रही बात जोर-जोर से बोलने की तो इसे वे औरतों का स्वभाव मानते थे।

एक दिन भोर में जब प्रो. साहब की नींद खुली तो उन्होंने कुत्तों के भौंकने की आवाज सुनी। टार्च लेकर बालकनी में आये। उन्होंने देखा कि चार कुत्ते आपस

में लड़ रहे हैं। जो कुत्ता ज्यादा ताकतवर है वह कमजोर कुत्तों को भगाने का प्रयास कर रहा है और मौका पा कर कुछ खा रहा है। प्रो. साहब ने ध्यान से देखा तो नीम के पेड़ के चारों ओर पूड़ी, हलवा, चना आदि बिखरे पड़े थे। शोरगुल सुनकर उनकी पत्नी कामिनी मलहोत्रा भी वहां आ गयीं।

“का हो ई सब का है?” प्रो. साहब ने अपनी पत्नी से घरेलू अन्दाज में पूछा। कामिनी ने कौतूहलपूर्ण निगाहों से नीचे देखा तो सारी तस्वीर समझ में आ गयी। उन्होंने प्रो. साहब से कहा, “दरअसल कल शीतला सप्तमी थी। इस दिन महिलाएं व्रत रखतीं हैं और अगले दिन भोर में शीतला मइया को हलुआ-पूड़ी चढ़ाया करती हैं। यह कार्य नीम के पेड़ के नीचे ही किया जाता है।”

प्रो. साहब अब सब कुछ समझ चुके थे। उन्होंने कुत्तों को किसी तरह वहां से खदेड़ा।

पूरे पेड़ की साफ सफाई की। उसे धोया और महिलाओं की अन्धभक्ति पर दुख व्यक्त किया। उन्होंने निर्णय लिया कि वे महिलाओं से इस सम्बन्ध में बात करेंगे। उन्हें उम्मीद थी कि वे उनको अपनी शिक्षा से समझा लेंगे।

अगले दिन वे थोड़ा जल्दी जग गये। महिलाओं का शोरगुल सुनकर वे बाहर निकल आये। उन्होंने उचित अवसर देखकर अपनी बात चला दी, “देखिये, आप लोग इस पेड़ में जल चढ़ाती हैं, यह तो ठीक है। वृक्षों का सम्मान होना ही चाहिए। किन्तु यहां कृपा करके गन्दगी न किया करें।”

मिसिराइन काकी को प्रो. साहब की बात जरा अटपटी लगी। उन्होंने नाराजगी भरे शब्दों में कहा, “का कहे प्रोफेसर साहब, गन्दगी! हम औरत लोग इहां पूजा करइ आइ थै तो आप का गन्दगी लागा थै।”

प्रो. साहब कुछ कहते कि उसके पहले ही लल्ली बुआ बोल पड़ी, “आप तो पढ़े-लिखे हैं सर! देवी मइया की पूजा करना कोई खराब बात है का?”

“देखिये, पूजा करना खराब बात नहीं है, लेकिन यदि उससे किसी को परेशानी हो तो ऐसी पूजा से क्या मतलब?” प्रो. साहब ने समझाते हुए कहा।

इस पर सविता भाभी ने मोर्चा सम्भाला, “देवी मइया के कार्य मा कवन परेशानी। ई सब घर दुआर नौकरी चाकरी सब ओनही का दीन है। अगर ओनकई पूजा न होये तो अनरथ होइ जाये।”

प्रो. साहब ने कहा, “यह सब आप लोग मन्दिर में किया करें। यह मेरा दरवाजा है। यहां यह सब अच्छा नहीं लगता।”

मिसिराइन काकी को फिर बोलना पड़ा, “प्रोफेसर साहब! आप किस्मत वाले हैं कि आपके दरवाजे पर देवी मइया का वास है। नीम का पेड़ बड़ी भाग से दुआरे पर उगा थै।”

प्रो. साहब की हर बात का जवाब महिलाओं के पास हाजिर था। वे निरुत्तर हो गये। महिलाओं के आगे उनकी एक न चली।

अभी कुछ ही महीने बीते थे कि नवरात्रि आ गयी। नीम का पेड़ एक बार पुनः पूजा पाठ का केन्द्र बन गया। शाम होते ही दर्जनों महिलाएं गाजे बाजे के साथ इकट्ठा जो जातीं। ढोल-मंजीरे की आवाज पूरे कालोनी में गूंजने लगती। प्रो. साहब जो नौ बजे चारपाई पकड़ लेते थे, अब उन्हें बारह बजे तक जागना पड़ता। घर में बच्चों की पढ़ाई बाधित होती थी। सुबह कालेज जाने में भी उन्हें देरी होने लगी। किन्तु वे असहाय थे। देवी मइया के कार्यों में बाधा डालना कालोनी वालों की निगाह में अपराध था।

नवरात्रि का अन्तिम दिन आ गया। कालोनी की महिलाओं ने आज विशेष पूजा रखी थी। प्रो. साहब घर पर ही थे। उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया था। वे बाहर की गतिविधियों से दूर रहना चाहते थे। किन्तु जैसे ही हवन शुरू हुआ उसका धुआं उनके घर में भरने लगा। अन्दर बैठना मुश्किल हो गया। कामिनी को धुएं से एलर्जी थी। बच्चों का भी आंख मींज-मींज कर बुरा हाल था।

प्रो. साहब परेशान थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें, क्या न करें। अब पानी सिर के ऊपर आ चुका था। पेड़ की जड़ पर फूल, पान, हलुवा, पूड़ी, मिठाई आदि का अम्बार लगा था। कई कुत्ते दूर बैठ कर लोगों के जाने का इन्तजार कर रहे थे। एक तान्त्रिक दो औरतों का भूत भगाने के लिए अपना मन्त्र पढ़ रहा था और बीच-बीच में फटकार लगाते हुए उनके ऊपर छड़ी का प्रहार भी कर रहा था। कुछ महिलाएं पेड़ के चारों ओर चक्कर लगा रही थीं।

यह सब देख प्रो. साहब को बड़ी पीड़ा हुई। वे अन्धविश्वास के विरोधी थे। अपने दरवाजे पर वे यह सब देख न सके। जरा कड़क आवाज में बोले, “यह क्या हो रहा है यहां? मेरे दरवाजे पर यह सब करने की अनुमति किसने दी? यहां से जितना जल्दी हो सके सब लोग फूट लो नहीं तो...”

सारी महिलाएं सकपका गयीं। थोड़ी देर के लिए वहां नीरवता छा गयी। तान्त्रिक अपना बोरिया बिस्तर समेटने लगा। देवी गीत गाने वाली महिलाएं चुप हो गयीं। किन्तु कालोनी की कुछ खास औरतों का हौसला अभी भी बुलन्द था। वे अपने को देवी मइया से कम नहीं समझती थीं। कालोनी के पुरुषों का भी उन्हें समर्थन प्राप्त था। मिसिराइन काकी से रहा न गया वे बोल पड़ी, “प्रोफेसर साहब, ई पूजा पाठ कालोनी के जमीन माँ होइ रही बा आपके घर मा नाहीं। आप कौन होत है रोकई वाले?”

इतना सुनकर अन्य महिलाओं का चेहरा चटक हो गया। एक महिला ने कहा, “नीम का पेड़ तौ पूजा पाठ खातिर ही होत है। इहां पूजा पाठ न होये त का होये। इहां धर्म कर्म से केहू का, का परेशानी होइ सकत थै।”

दूसरी महिला ने भी नहले पर दहला जड़ा, “लागत है प्रो. साहब इ कालोनी का अमन चैन नाहीं देखै चहतेन। देवी मइया की पूजा से ही इहां रौनक बा। अगर उ रूठ जइहंइ तौ इ बड़ा-बड़ा घर दुआर कामे न आये।”

प्रो. साहब घायल शेर की भांति खड़े थे। महिलाओं के साथ वाक्युद्ध करने की उनके पास क्षमता न थी।

इतने में कालोनी के लक्ष्मी पाण्डे, शंकर तिवारी, राधा रमण दूबे आदि भी वहां आ गये। प्रो. साहब ने उन्हें अपनी परेशानी कह सुनायी, किन्तु उनके ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लक्ष्मी पांडे ने प्रो. साहब को समझाते हुए कहा, “नीम के पेड़ में आज से नहीं सनातन से पूजा होती आ रही है। किसी की आस्था पर चोट करना पाप होता है, प्रो. साहब! आप सौभाग्यशाली हैं कि आपके दरवाजे पर देवी मइया की पूजा हो रही है।”

“अगर ऐसी ही बात है तो मैं इस पेड़ को पाण्डेय जी! आपके दरवाजे पर लगा देता हूं। यह सौभाग्य आपको ही मिले।” प्रो. साहब ने लक्ष्मी पांडे से कहा।

प्रोफेसर साहब का प्रस्ताव सुनकर पांडे जी इधर-उधर देखने लगे। उनको यह प्रस्ताव मंजूर नहीं था। वे बोले, “नीम का पेड़ दरवाजे पर लगाना ही नहीं चाहिए। इससे असुविधा तो होती ही है।” इतना कहते हुए वे वहां से रफूचक्कर हो गये। अन्य लोग भी प्रो. साहब के तर्कों को न झेल सके और वहां से चलते बने।

उस रात प्रोफेसर साहब को ठीक से नींद नहीं आयी। वे नीम के पेड़ के बारे सोचते रहे। कामिनी ने सुझाव दिया कि, “पेड़ काट डालिए। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।” किन्तु प्रो. साहब अपने ही लगाये पेड़ को कैसे काटते? उनके लिए पेड़ काटना किसी की हत्या करने के बराबर था। यदि वे इसे रखते हैं तो यह झंझट उन्हें हमेशा झेलनी पड़ेगी। वे सारी रात इसी उधेड़बुन में पड़े रहे।

अगले दिन कालोनी की महिलाएं जब जल चढ़ाने आयीं तो नीम का पेड़ वहां से गायब था। दरअसल प्रो. साहब उसे कालेज में लगाने के लिए सुबह तड़के ही खुदवा ले गये थे। □

ज्यों तिल माहीं तेल

रचयिता—श्री प्यारे लाल साहू

पल पल चुक रहा सांसों का तेल।
कब खतम हो जाये जीवन का खेल ॥
तलाश करता रहा जिस सुख की,
उससे तो कभी हुई नहीं मेल।
तेरा परमात्मा तो तुझमें है,
ज्यों तिल माहीं तेल।
हम सब हैं कैदी,
ये जग है इक जेल।
कर्मों की सजा भुगते बिना,
नहीं मिलेगी बेल।
कोई संग न तेरे चलेगा।
तुझे जाना होगा अकेल ॥
जीवन एक परीक्षा है।
कोई पास कोई फेल ॥
भक्ति बिना न मुक्ति मिलेगी।
'प्यारे' यह सिद्धान्त अपेल ॥

गुरु ज्ञान धार रे

रचयिता—ब्रह्मचारी रामलाल

धन है माया तन है माया, माया है विस्तार रे।
माया से तुम बचो रे भाई, माया है असार रे ॥
माया सबको है लुभाती, वश में कर सबको नचाती।
सुर नर मुनि सबको भटकाती, ना कर माया से प्यार रे ॥
माया के हैं रूप हजार, रहती है गली शहर बाजार।
भूले रहते हैं सब नर नार, ऐसो जीवन है बेकार रे ॥
माने हो तुम जिसमें सुख, है वह मन माया दुख।
छोड़ो अब तो मन की भूख, लेओ न निज शिर भार रे ॥
माया है तेरे ही बनाई, और तेरे मन में है समाई।
सत्संग कर इसको हटाई, करके विवेक विचार रे ॥
छोड़ तू जग सुख की आशा, मिट जायेगा मन का तमाशा।
सारा सुख है तेरे पासा, 'रामलाल' गुरु ज्ञान धार रे ॥

बीजक चिंतन

बाह्याडंबर छोड़कर सारतत्त्व पर ध्यान दो

शब्द-98

आव बे आव मुझे हरि को नाम, और सकल तजु कौने काम ॥
कहाँ तब आदम कहाँ तब हव्वा, कहाँ तब पीर पैगम्बर हुवा ॥
कहाँ तब जिमी कहाँ असमान, कहाँ तब बेद कितेब कुरान ॥
जिन दुनियाँ में रची मसीद, झूठा रोजा झूठी ईद ॥
साँचा एक अल्लाह को नाम, जाको नड़ नड़ करो सलाम ॥
कहुँधों बिहिस्त कहाँ ते आई, किसके कहे तुम छुरी चलाई ॥
कर्ता किरतम बाजी लाई, हिन्दू तुरुक की राह चलाई ॥
कहाँ तब दिवस कहाँ तब राती, कहो तब किरतम किन उत्पाती ॥
नहिं वाके जाति नहीं वाके पाँती, कहहिं कबीर वाके दिवस न राती ॥

शब्दार्थ—आव= आ, आओ। बे= अरे। आदम= यहूदी, ईसाई, इसलामी आदि सभी सामी मत वालों द्वारा माना गया सृष्टि का प्रथम पुरुष। हव्वा=हौवा, आदम की पत्नी, सामी मत वालों द्वारा मान्य सृष्टि की आदि माता, जगज्जननी। मसीद= मसजिद। रोजा= रमजान महीने में दिन का उपवास। ईद= मुसलमानों का त्योहार। बिहिस्त= बिहिश्त, स्वर्ग। कर्ता= ईश्वर। किरतम= कृत्रिम, निर्मित, शास्त्र, मत, मजहब आदि। बाजी= खेल, धोखा, चालाकी।

भावार्थ—अरे भोले ! इधर आ और सुन ! मेरी समझ से तू केवल हरि का नाम ले, हरि के तत्त्व को समझ, शेष सारे बाह्याडंबरों को छोड़ दे। ये दिखावे के धर्म किस काम के हैं ? ॥ 1 ॥ तब आदम कहाँ थे और हौवा भी कहाँ थीं ? तब पीर-पैगम्बर भी कहाँ पैदा हुए थे ? ॥ 2 ॥ तब जमीन और आसमान भी कहाँ थे और तब वेद, किताब और कुरान भी कहाँ थे ? ॥ 3 ॥ जिन्होंने दुनिया में मसजिद बनायी वे तब कहाँ थे ? सच पूछो तो रोजा व्यर्थ है और ईद भी व्यर्थ है ॥ 4 ॥ सच्चा तो एक अल्लाह का नाम है जिसको तुम झुक-झुककर सलाम करते हो ॥ 5 ॥ कहो भला, ये बिहिश्त कहाँ से आ गयी जिसको पाने के लिए तुम कुर्बानी का नाम लेकर जीव-हत्या करते हो ? किसकी

आज्ञा से तुमने मासूम जानवरों पर बेरहमी से छुरी चलायी है ? ॥ 6 ॥ इन सारे कृत्रिम आडंबरों के मूल में ईश्वर का नाम लेकर और उसके द्वारा इन्हें प्रमाणित बताकर तो मनुष्य के साथ छलावा ही किया गया है और इसी छलावा की आड़ में हिन्दू, तुरुक आदि के अनेक मजहब फैलाये गये हैं जो एक सत्य को निरंतर काटने में लगे रहते हैं ॥ 7 ॥ तब उसमें दिन कहाँ था, रात कहाँ थी ? फिर तब बनावटी बातें एवं नाना आडंबर किसने पैदा किये ? ॥ 8 ॥ कबीर साहेब कहते हैं कि जो सबका प्रेमास्पद एवं परम प्राप्तव्य निज आत्मस्वरूप है न उसमें जाति है और न पाँति है, न उसमें दिन है और न रात है ॥ 9 ॥

व्याख्या—स्वतंत्रचेता, विशालहृदय, पूरी मानवता को एक में समेट लेने की इच्छा रखने वाले परम संत कबीर का हृदय छटपटाता था कि आदमी कैसे उस तत्त्व को समझे जिससे उसके सारे आपसी भेदभाव मिट जायें और संसार में इनसानियत की धारा बहने लगे। मजहबों के बाह्याडंबर ही मनुष्य-मनुष्य के बीच में दीवार बनते हैं। धर्म के असली रूप शील, क्षमा, प्रेम, दया, करुणा, अहिंसा, संयम, परहेजगारी आदि हम जितना ही धारण करें उतना स्वयं सुखी होंगे और दूसरों को सुख पहुंचायेंगे।

कबीर साहेब के समय में हिन्दू और मुसलमान— दो परंपराएं मुख्य थीं जो अपने-अपने बाहरी आडंबरों को लेकर आपस में लड़ रही थीं। लड़ाई के कारण दोनों के केवल बाहरी आचार थे और वही आज भी हैं, जैसे मंदिर-मसजिद, मुहर्रम, ईद, बकरीद, घंटा, अजान आदि। यह ठीक है कि सभी मनुष्य केवल उच्च ज्ञान को नहीं समझ सकते। यह जरूरी है कि उनके मनोरंजन एवं उपासना-पूजा के लिए कुछ सरल ढंग हो, तीज-त्योहार हो, ईद-बकरीद हो, परन्तु यदि इन सब बातों को लेकर आपस में ईर्ष्या-द्वेष की आग जले तथा लट्टमलट्ट हो तो ये सब किस काम के ?

इस शब्द में ज्यादातर मुसलमानों के बाह्याडंबर पर कहा गया है। हिन्दू-मुसलमान तथा सभी ईश्वरवादी मत यह मानते हैं कि पहले यह दुनिया नहीं थी। किसी काल में यह बनी। कबीर साहेब कहते हैं कि जब

दुनिया नहीं थी, तब आदम, हौवा और पीर-पैगंबर भी कहां थे? तब तो वेद, कुरान तथा कोई भी धर्मशास्त्र नहीं था। इन सबका अर्थ यह हुआ कि पीर-पैगंबर तथा धर्मशास्त्र की बातें सब पीछे आयी हैं। पहले कभी दुनिया नहीं थी या सदैव से थी, दोनों ही दृष्टियों से यह सिद्ध होता है कि सारी मजहबी भावनाएं, अवतारवाद, पैगंबरवाद, ईश्वरीय किताब आदि की बातें सदा से नहीं थीं। हिन्दू हो या मुसलमान, यहूदी हो या ईसाई या अन्य मत-मजहब, सबके अपने इतिहास हैं। सभी मजहबों, वादों तथा पुस्तकों के निर्माण एवं रचना का अपना-अपना काल है। उसके पहले उनकी बातें नहीं थीं। इसलिए किसी मजहब एवं संप्रदाय की किताब, वाद एवं नियम अनादि-अनन्त नहीं हैं और न वे सारी दुनिया के केन्द्रबिन्दु हैं।

यहूदी, ईसाई, मुसलमानादि सामी¹ मत वाले सृष्टि का प्रथम मानव आदम को मानते हैं। यहोबा (ईश्वर) ने सोते हुए आदम की बाईं पसली निकालकर हौवा नाम की नारी बनायी और वही आदम की पत्नी बनी तथा सृष्टि की प्रथम नारी। इसकी कथा बाइबिल में लिखी है। पीछे इनमें मूसा, ईसा, मुहम्मद आदि कई महापुरुष ईश्वर के संदेशवाहक-पैगंबर माने गये। कबीर साहेब सामी मत वालों से कहते हैं कि तुम्हारे मतानुसार पहले केवल ईश्वर था और कुछ नहीं था। तो सादे ढंग से उसी ईश्वर को ही क्यों नहीं जपते हो? आदम, हौवा, पीर, पैगंबर, किताब, कुरान आदि का घमंड लेकर क्यों समाज को तोड़ते हो? मसजिद तुमने बनायी, रोजा, नमाज, ईद-बकरीद तुमने कायम किये तब इन्हीं सब कृत्रिम बातों को लेकर मानव समाज में दरारें क्यों बना रहे हो? जो आदम, हौवा, पैगंबर, कुरान, मसजिद, रोजा, ईद-बकरीद को माने और उसके अनुसार चले वही सच्चा धर्मी है और जो इन सब को न मानता हो, इनका न पालन करता हो, वह धर्मी नहीं है ऐसी संकुचितता क्यों! सच्चा तो अल्लाह

1. बाइबिल के अनुसार 'साम' नाम के व्यक्ति 'नूह' के पुत्र थे। अरब, यहूदी, मिस्री आदि 'साम' की ही संतान माने जाते हैं। इसलिए यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि के मजहब सामी मजहब कहलाते हैं।

का नाम है, इसलिए उसी को श्रेय दो। आडंबर में क्यों उलझते हो जो तुम्हारा ही बनाया है। तुम्हारे मतानुसार ही अल्लाह स्वयंभू है; परन्तु पीर-पैगंबर, मसजिद, रोजा, ईद वगैरह तो तुम्हारे बनाये हैं।

तुमने बिहिश्त की कल्पना कर ली और उसके पीछे यह लगा दिया कि कुरान, मुहम्मद तथा इसलाम के द्वारा ही उसे पाया जा सकता है। यहां अल्लाह जो सार्वभौमिक धारणा है उसकी उपेक्षा कर दी गयी और कृत्रिम बातों को ऊपर ला दिया गया। अल्लाह को तो राम, ईश्वर आदि अन्य नामों से दूसरे लोग भी जपते हैं, परन्तु कुरान, मुहम्मद और इसलाम सब नहीं स्वीकार सकते। इनसान को चाहिए कि वह धर्म के ऐसे आधारबिन्दु पर जोर दे जहां पर सब इकट्ठे हो सकें। बिहिश्त के पीछे एक भयंकर धारणा लगा दी गयी— कुर्बानी के नाम पर जीवहत्या। साहेब कहते हैं कि तुम केवल एक ईश्वर के भक्त बनते हो, तो यह बताओ कि तुम किसकी आज्ञा से मूक प्राणियों पर छूरी चलाते हो? क्या ईश्वर ने आज्ञा दी है? ईश्वर ऐसी आज्ञा कभी नहीं दे सकता। वह अपने फरजंदों की हत्या करने की आज्ञा कैसे दे सकता है? वह निहायत रहम वाला है, फिर उससे बेरहमी की आज्ञा हो भी कैसे सकती है? अतएव यह जीवहत्या कर स्वर्ग पाने की बात भी तुम्हारी बनावटी है। इसमें तुम्हारा भ्रम तथा जीभ-स्वाद कारण है।

“कर्ता किरतम बाजी लाई, हिन्दू तुरुक की राह चलाई।” चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या दूसरे ईश्वर वाले, सबने अपने-अपने बनाये नियमों, किताबों, अवतारों, पैगंबरों को ईश्वर से जोड़ रखा है। सब यही कहते हैं कि हमारी किताब ईश्वरीय है, हमारा महापुरुष ईश्वर का अवतार, पैगंबर आदि है, हमारे मत के सारे नियम ईश्वरप्रदत्त हैं। साहेब कहते हैं कि यह कर्ता कृत्रिम की बाजी है, अर्थात् अपने सारे कृत्रिम आडंबरों को कर्ता से जोड़ने का गोरखधंधा है। जब अपने बनाये आडंबर ईश्वर से जोड़ दिये जाते हैं तब वे प्रामाणिकता के जामा पहन लेते हैं। तब वहीं एक दूसरे मत से आस्तिक-नास्तिक, दीनदार-बेदीन तथा पवित्र-अपवित्र का घृणित व्यवहार चलता है।

“कहाँ तब दिवस कहाँ तब राती, कहे तब किरतम किन उत्पाती।” ईश्वरवादानुसार तो सृष्टि के पहले दिन-रात तथा उनमें होने वाले सारे व्यवहार ही नहीं थे, तब इन कृत्रिम बातों को किसने पैदा किया? वस्तुतः सारी कल्पनाएं मनुष्यों की हैं।

आत्मा में कोई जाति-पांति और दिन-रात नहीं है। उसी प्रकार जैसी ईश्वर की अवधारणा है उसके अनुसार ही उसकी भी कोई जाति-पांति नहीं है और न उसमें रात-दिन तथा उनमें होने वाले व्यवहार हैं। इसलिए जब वह सार्वभौमिक है तब उसमें बाह्याडंबर न जोड़कर उसे सार्वभौमिक ही रहने दो। जो सार्वभौमिक है उसे मत-मजहब एवं बाह्याचार की संकुचित डिबिया में न बंद करो।

जो लोग आत्मा से अलग ईश्वर मानते हैं, इस पद

में सद्गुरु कबीर ने उन्हें उसी ढंग से समझाया है। इस पूरे पद का सार यही है कि सत्य को बाह्याचार एवं आडंबर में विखंडित मत करो। यदि हर मत वाले अपने बाह्याचार को गौण स्थान दें और केवल सत्य पर जोर दें तो सत्य सार्वभौमिक होने से सब में समन्वय तथा एकता होगी, मानव-समाज के लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है।

वस्तुतः हर मनुष्य का प्राप्तव्य उसका अपना आत्मस्वरूप है, और वह शुद्ध चेतन है। वही ईश्वर है, वही अल्लाह है “दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।” इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए किसी सांप्रदायिकता की आवश्यकता नहीं है, किन्तु सच्चे सद्गुरु की शरण की आवश्यकता है।

करु बहियाँ बल आपनी

लेखक—डॉ. रणजीत सिंह

मैं बचपन में शिव भक्त था। यदि मुझे कोई व्याधि होती तो कहा जाता कि शिव आराधना करो सब ठीक हो जायेगा। रोग ठीक करने, धन प्राप्ति, मुराद या मनोकामना पूर्ति के लिए, मुकदमा जीतने के लिए शिवपूजा पहले की अपेक्षा और बढ़ा दी जाती। लेकिन वास्तविकता यह है कि इससे कुछ हासिल नहीं होता है। यदि हासिल भी होता है तो यह मात्र संयोग माना जायेगा। संत सदैव प्रेरणास्रोत रहे हैं। चाहे वे जो भी हों वे अपनी कथनी, करनी, रहनी व गहनी से समाज को प्रभावित करते हैं। वास्तविक संत कभी भी धन प्राप्ति, बीमारी ठीक करने, मुकदमा जीतने व मनोकामना पूर्ति के लिए कभी आश्वासन नहीं देते हैं, क्योंकि ऐसा करके वे कर्म सिद्धान्त को झुठलाना नहीं चाहते हैं। कबीर साहेब जी कहते हैं—

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहे, सो कस मरे पियास॥

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग दूँहै बन माँहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया जानत नाँहि॥

आदमी हर लक्ष्य पूर्ति के लिए बाहरी ईश्वर की कल्पना करता है जबकि वह स्वयं में ईश्वर है। वह अपने आत्मराम को भूलकर शार्टकट के चक्कर में आलसी, अकर्मण्य तथा प्रमादी बन जाता है। जबकि वह अपने आत्मविश्वास, साहस, परिश्रम और साधना से सब कुछ हासिल कर सकता है।

दरअसल अज्ञान के कारण सामान्य आदमी लोगों की बातें इसलिए मान लेता है कि उसे सभी लोग कह रहे हैं जबकि ऐसा नहीं है। सोने की परख सुनार ही करता है, सामान्य आदमी नहीं। तमाम संत आशीर्वाद, चरण-स्पर्श एवं चढ़ावा चढ़वाकर सफलता प्राप्त करने की बातें करते हैं लेकिन पारखी संत इसका दावा नहीं करते हैं। पारखी (विवेकी) संत अवतार, चमत्कार, पाखण्ड, ढोंग, प्रदर्शन, जात-पात, छुआछूत,

अंधविश्वास, ऊंच-नीच, ढकोसला, जप-तप, व्रत, माला-मुण्डन व मूर्ति में विश्वास नहीं करते। वे कहते हैं मन की सात्त्विकता, एकाग्रता एवं प्रसन्नता के लिए मनुष्य अपने श्रद्धा-विश्वास अनुसार जो कुछ भी पूजा-पाठ, नाम-जप, कर्मकाण्ड करे कर सकता है, परंतु किसी भी दिशा में उन्नति एवं सफलता प्राप्ति के लिए परिश्रम-साधना की आवश्यकता है न कि पूजा-पाठ, कर्मकांड की।

किसान यदि कर्म न करे तो खेत में उत्पादन कैसे होगा? आदमी कर्म न करे तो धन कैसे प्राप्त होगा? रोगी अस्पताल में इलाज न कराये तो ठीक कैसे होगा? हां, कुछ लोग अपनी आत्मस्थिति को मजबूत कर कैंसर, एड्स एवं टी.बी. आदि रोगों को दूर करने में सफलता प्राप्त किये हैं क्योंकि जैसा विचार वैसा रसायन शरीर में स्रवित होता है। राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, लियो टाल्स्टाय, अजामिल, आम्रपाली, अंगुलिमाल आदि ने अपनी आत्मोन्नति करके ही अपना कल्याण किया अर्थात् अपनी आत्मा को ही परमात्मा बना लिया। आज संसार उनको भगवान मानकर पूजता है।

आज का इंसान नशे में सुख ढूँढ़ता है। दुनिया अपने-अपने तरीके से शरीर के बाहर सुख ढूँढ़ने का प्रयास कर रही है, जबकि सुख तो आत्मनियन्त्रण में, निजस्वरूप में स्थित होने में है जो अंदर है। अंतर्मुख होकर आत्मा में लौट आना ही सच्चा सत्संग है। सत्य ही ईश्वर है ऐसा पारखी संतों का कहना है।

प्राचीन काल में लोग संतों के पास ज्ञान प्राप्ति हेतु समिधा अर्थात् हवन की लकड़ी लेकर जाते थे तो संत उन्हें ज्ञान देते थे लेकिन आज लोग अनिष्ट से बचे रहने के लिए चढ़ावे की मात्रा बढ़ा देते हैं। बड़े-बुजुर्ग की दुहाई देकर कि वे सब पूजा-पाठ करते थे क्या वे गलत थे, लेकिन किसी बात को मानने से पहले उसे विवेक की कसौटी पर परखकर मानना चाहिए तभी कल्याण होगा। संत कहते हैं कि आत्मकल्याण के लिए मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च व तीर्थ में जप, तप, व्रत, पूजापाठ, स्नान, ध्यान, छापा, तिलक, मुण्डन, माला व

मूर्ति की आवश्यकता नहीं है बल्कि दुर्व्यसन, दुष्प्रवृत्तियों, भ्रम, भुलावा, भेद व भटकाव रहित होकर तथा निष्कपट, निष्कलंक, निष्काम, निर्विकार होकर आत्मरमण करें यही कल्याण का सच्चा रास्ता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

मोको कहाँ ढूँढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में।
न मैं मंदिर न मैं मस्जिद, न काबा कैलास में॥

प्रसिद्ध निरंकारी संत बाबा हरदेव सिंह जी महाराज कहते हैं कि “अपनी आत्मा को जानना ही ईश्वर को पूर्णरूपेण जानना है।” संसार के चतुर लोग सीधे-साधे, भोले-भाले प्राणियों के अज्ञान, आस्था, विश्वास, श्रद्धा व संतोष का नाजायज फायदा उठाकर उनका आर्थिक एवं बौद्धिक शोषण करते रहे हैं। यदि लोग भ्रम, अंधविश्वास छोड़कर विवेकपूर्वक काम करें तो उनका कल्याण होने में देर न लगेगी। समाज के चतुर लोग भोले-भाले, अशिक्षितों व अज्ञानियों का शोषण कर अपनी आजीविका चलाते हैं। कहावत भी है कि “जब तक मूर्ख लोग रहेंगे चतुर लोग खाये बिना नहीं मरेंगे”।

निष्कर्ष स्वरूप यही कहा जा सकता है कि जो भी जीवन में महापुरुष बना है उसने अंतरात्मा की गहराइयों में ही गोता लगाया है न कि बाहर। आम जनमानस भी ठीक इसी तरह अपनी अंतरात्मा में गोता लगाकर कृतार्थ हो सकता है।

जिन्दगी में मुश्किलें तमाम हैं,
फिर भी इन होंठों पर मुस्कान है।
क्योंकि जीना जब हर हाल में है,
तो मुस्कराकर जीने में क्या नुकसान है।
काम करो ऐसा कि पहचान बन जाये,
हर कदम चलो ऐसा कि निशान बन जाये।
यहां जिन्दगी तो सभी काट लेते हैं,
जिन्दगी जियो ऐसी कि मिसाल बन जाये ॥

—अज्ञात

बिखरे मोती

प्रस्तुति—विवेकदास

1. हमेशा खुश रहना चाहिए क्योंकि परेशान होने से कल की मुश्किल दूर नहीं होती बल्कि आज का शुकून भी चला जाता है।

2. पतझड़ हुए बिना पेड़ों में नये पत्ते नहीं आते इसी प्रकार कठिनाई और संघर्ष सहे बिना अच्छे दिन नहीं आते।

3. संसार में दो शक्तिशाली हथियार हैं, मौन और मुस्कान। मौन रहकर कई समस्याओं को दूर किया जा सकता है और मुस्कान से कई समस्याओं का हल किया जा सकता है।

4. जो हमेशा कहता है कि मेरे पास समय नहीं है असल में वह व्यस्त नहीं, बल्कि अस्त-व्यस्त है।

5. अहंकार प्रदर्शित करके किसी रिश्ते को तोड़ने की अपेक्षा अच्छा है कि माफी मांगकर उस रिस्ते को निभाया जाये।

6. प्रसन्नता न धन से आती है, न परिवार से और न ही पद-प्रतिष्ठा से। प्रसन्नता तो पवित्र मन का प्रसाद है। हमें इसके लिए यत्न करना चाहिए।

7. क्रोधी व्यक्ति संसार का सबसे कमजोर व्यक्ति है और वह क्रोध के माध्यम से अपनी कमजोरी को प्रदर्शित करता है। वास्तव में मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्ति को ही अधिक क्रोध आता है।

8. कोई भी व्यक्ति शत्रु या मित्र बनकर पैदा नहीं होता। उसकी वाणी और व्यवहार ही उसके लिए शत्रु या मित्र का निर्माण करते हैं।

9. मन-इन्द्रियों की स्थिरता ही परम गति है। चंचलता में ही उद्वेग, अशांति और कलह है और स्थिरता में ही सुख और स्वर्ग है।

10. कौन क्या करता है? कहां जाता है? कैसे रहता है? इन सबको जानने की अपेक्षा हमें अपने को देखना और जानना चाहिए कि मैं कैसा हूँ और क्या

करता हूँ, क्योंकि हम ही अपना शत्रु और हम ही अपना मित्र हैं।

11. सुख एक अभावात्मक अनुभूति है। दुख के अभाव का नाम ही सुख है। यदि दुख न होता तो सुख की भी आवश्यकता न होती। भूख का दुख है तो भोजन में सुख लगता है। प्यास का दुख है तो पानी में सुख लगता है। तृष्णा का दुख है इसलिए विषयों में सुख लगता है।

12. सुनने की आदत डालें क्योंकि ताना मारने वालों की कमी नहीं है।

मुस्कराने की आदत डालें क्योंकि रुलाने वालों की कमी नहीं है।

ऊपर उठने की आदत डालें क्योंकि टांग खींचने वालों की कमी नहीं है।

प्रोत्साहित करने की आदत डालें क्योंकि हतोत्साहित करने वालों की कमी नहीं है।

13. जैसे हमारे विचार होते हैं, वैसे भाव बनते हैं और जैसे भाव बनते हैं वैसे कर्म होते हैं। जैसे कर्म होते हैं वैसे संस्कार बनते हैं और जैसे संस्कार होते हैं वैसे हमें सुख-दुख होते हैं। इसलिए जिसका भाव अच्छा होता है उसका हर काम अच्छा होता है।

14. हमारी दृष्टि जहां तक जाती है सब कुछ परिवर्तनशील है, अनित्य और अनात्म है, फिर उनसे नित्य सुख कैसे मिल सकता है! जो स्वयं अनित्य है उससे नित्य और स्थिर सुख की कामना भोलापन के सिवाय कुछ नहीं है।

15. धर्म न पोथी में है, न ही तीरथ और मूरत में है और न ही बाह्य आडम्बर और क्रियाकाण्ड में है। धर्म है शील और सदाचार में। धर्म है मन की पवित्रता में। जिसे हमें धारण करना चाहिए।

16. किसी की उन्नति को देखकर यदि हमारे अन्दर ईर्ष्या का भाव पैदा होता है, किसी दीन-दुखी को

देखकर घृणा का भाव पैदा होता है तो हमारा चित्त मलिन है और जब तक चित्त मलिन रहेगा, हम सुखी नहीं हो पायेंगे।

17. जिस दिन किसी की उन्नति देखकर प्रसन्नता का अनुभव होने लगे और किसी दीन-दुखी को देखकर करुणा का भाव पैदा होने लगे तो समझना कि हम सही अर्थ में इंसान बन गये हैं।

18. बहिर्मुख चित्त का इंसान कभी शांति को उपलब्ध नहीं हो सकता क्योंकि बहिर्मुखता से अहंकार और कामना का जन्म होता है। और यदि अहंकार और कामना जीवन में हैं तो शांति कैसे आ सकती है।

19. संसार हमें न सुख दे सकता है और न ही दुख। हम स्वयं ही इसके निर्माता और भोक्ता हैं। संसार के प्राणी-पदार्थों को अपना मानकर, उनके अनुकूल होने पर सुखी और प्रतिकूल होने पर दुखी होते हैं।

20. किसी पर क्रोधित होकर हम अपनी ही मूर्खता का परिचय देते हैं। भले ही हमें लगता है कि सामने वाला व्यक्ति मूर्ख है किन्तु विचार करने पर लगेगा हम तो बड़े मूर्ख हैं।

21. क्रोध करने से चेहरा तो कुरूप और विकृत हो ही जाता है मन भी विकृत हो जाता है। वाणी भी विकृत हो जाती है। जब पूरा व्यक्तित्व ही विकृत हो गया फिर लोगों को आप अच्छे कैसे लग सकते हैं।

22. क्रोधी व्यक्ति को क्रोध की अवस्था में हमेशा यह लगता है कि मैं सही हूँ और दूसरा गलत है। कभी भी क्रोधी व्यक्ति नहीं स्वीकार सकता है कि मैं गलत हूँ और यदि स्वीकार ले तो तत्क्षण क्रोध शांत हो जायेगा।

23. प्रेम वह सुगंधित पुष्प है जिसके जीवन में खिल जाता है उसका जीवन सुवासित हो जाता है। इसके बिना जीवन निरस और शुष्क हो जाता है।

24. प्रेम जीवन का एक हिस्सा नहीं है, अपितु प्रेम जीवन की वह कला है जिससे जीवन सार्थक हो जाता है।

25. जब तक जीवन है तब तक व्यवहार है और

व्यवहार मनुष्यों से होता है। क्या व्यवहार छोड़कर रहा जा सकता है? नहीं। तो फिर व्यवहार को प्रेमपूर्ण और सुन्दर बनाकर सुखी होने के बजाय व्यवहार से मुख क्यों मोड़ना।

26. हमारे दोनों हाथ यद्यपि समान हैं किन्तु दोनों की कार्यक्षमता भिन्न है। हमारी सभी अंगुलियां भी बराबर नहीं हैं तो फिर समाज में सबकी कार्यक्षमता एक समान कैसे हो सकती है।

27. जब हमसे कोई गलती या भूल हो जाती है तो हम चाहते हैं कि दूसरा हमें माफ कर दे तो हमें भी तो दूसरों की गलती में माफी देना चाहिए।

27. जब हमें अपनी निंदा सुनकर अच्छा नहीं लगता जबकि उससे हमारा लाभ ही हो सकता है तो फिर हम यदि दूसरों की निंदा करें तो उनको अच्छा कैसे लग सकता है। कोई निंदक व्यक्ति है तो उसे हम अच्छा नहीं मानते हैं तो हम यदि किसी की निंदा करते हैं तो अच्छा कैसे हो सकते हैं।

28. सत्य वर्तमान है। सत्य कभी भूत और भविष्य नहीं हो सकता। इसलिए सत्य को उपलब्ध होने के लिए वर्तमान में होना आवश्यक है।

29. वर्तमान में होना ही ध्यान है। वर्तमान में जीना ही साधना है और वर्तमान में होना ही मोक्ष है।

जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य है परम शान्ति की प्राप्ति और वह अपने भीतर है। यदि मन शांत है तो जीवन में क्या कमी है और यदि मन शांत नहीं हुआ तो जीवन निष्फल गया। बाहर का सारा टीमटाम किस काम का।

समाधि-सुख जीवन का सर्वोच्च सुख है। जिसकी ममता और द्वेष की आग बुझ गयी है, जो प्राणिमात्र का हितचिंतक है, जिसे विषय-भोग और सम्मान की लालसा नहीं है, जिसका मन निर्ग्रन्थ, अनासक्त और निर्मल है, वही समाधि-लाभ का अधिकारी है।

—पूज्य गुरुदेव जी

सुखी होने के उपाय

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 22-08-2004 को श्री कबीर संस्थान, नवापारा-राजिम, रायपुर में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

सज्जनो और देवियो! मनुष्य के मन में हर समय भय बना रहता है और उस भय से वह दुखी रहता है। मनुष्य को हानि का भय, घाटा का भय, बिगड़ने का भय, बिछुड़ने का भय बना रहता है और जिस-जिसका वह भय करता है वह सब होता जाता है। उसके भय करने से परिवर्तन रुकता नहीं। परिवर्तन सदा से होता रहा है और सदा होता रहेगा। भय एक भावना है और मानसिक दुर्बलता है।

मनुष्य यह समझता है कि हम ही दुनिया में सबसे ज्यादा दुखी हैं। एक सज्जन मिले तो कहने लगे कि महाराज, इस दुनिया में हम ही सबसे ज्यादा दुखी हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या आपने दुनियाभर का सर्वेक्षण कर लिया है? उनसे मैंने पूछा कि क्या आप घर से निकाल दिये गये हैं। वे कहे नहीं महाराज, घर में हूँ। मैंने फिर पूछा कि क्या आपकी पत्नी चुरा ली गयी है? वे कहे—नहीं महाराज, पत्नी तो घर में है। मैंने कहा फिर तब तो आप महाराज राम से ज्यादा दुखी नहीं हैं। श्रीराम चौदह वर्ष के लिए घर से निकाल दिये गये थे और व्रत यह था कि वे किसी शहर-बाजार में न रहें, जंगल में रहें और उसी बीच में उनकी पत्नी सीता भी चुरा ली गयी थी तो क्या आप उनसे भी ज्यादा दुखी हैं। मेरी बात को सुनकर वे सज्जन हंसने लगे।

हर आदमी के सामने उसका अपना दुख रहता है इसलिए वह समझता है कि दुनिया में हम ही सबसे ज्यादा दुखी हैं। अगर मेहनत करने पर भी भोजन न मिले तब दुख है। अगर तन ढकने के लिए कुछ कपड़े न मिलें तो दुख है। अगर रहने को घर न मिले तब दुख है। अगर छाया में रह रहे हैं और भोजन मिल जाता है और तन ढकने के लिए कपड़े मिल जाते हैं तब दुख क्या है। कोई आपको कुछ कहे न, यह क्या कभी सम्भव है? क्या यह किसी के लिए सम्भव हुआ

है? दूध के धोये पुरुषों को भी भला-बुरा कहा गया है। वे भी निन्दित किये गये हैं।

श्री विशाल साहेब के जीवन को मैंने देखा है। सन् 1950 में पहली बार जब कबीरपंथ का ज्ञान मुझे हुआ तभी से 'भवयान' मूल जो उनकी रचना है, पढ़ने लगा। उनकी महिमा सुनता था। सन् 1953 में जब गृहत्याग किया तब उनके दर्शन किया। तो जैसे सुनता था वैसे उनको देखा। कहीं भी वे दखल करना नहीं चाहते थे बल्कि सबसे हटकर रहना चाहते थे। किसी से कुछ नहीं चाहते थे लेकिन उनको बहुत गालियां दी गयीं। यहां तक कि गाली में पुस्तकें छपीं और निकटवालों ने उनको बुरा कहा।

तथागत बुद्ध का ही एक साधु उनका इतना घोर विरोध किया कि हत्या तक का षड्यन्त्र किया। उसका नाम देवदत्त था। महावीर स्वामी का भी घोर विरोध उनके जीवन में ही हुआ। विरोध से बचा कौन है इस संसार में? कबीर साहेब ने भी कहा है—

हैं जाना कुलहंस हो, ताते कीन्हा संग।

जो जानत बगु बावरा, छुये न देतेउँ अंग॥

जब ऐसी बात है तो निश्चित है कि साहेब भी कहीं धोखा खाये थे तब तो ऐसी बात कहे हैं।

आप चाहते हैं कि आपको कोई कुछ न कहे यह क्या कभी होनेवाला है। आपकी जितनी चीजें बढ़ गयी हैं वे घटने न पायें बल्कि और बढ़ती चली जायें, यह कब होनेवाला है। बढ़ा है तो घटेगा लेकिन घटने के बावजूद आपकी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति में अंतर नहीं पड़ेगा। आपका जितना कुछ है सब लुट जाये तो भी आप खाने को पायेंगे, पहनने को पायेंगे और रहने को पायेंगे, यह पक्का समझ लो। परिवार के लोग या साथी जितने हैं वे सब छुट जायें तो भी आपके गुजर-बसर में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कोई न कोई आपकी

सहायता कर देगा, यह विश्वास रखना चाहिए। ऐसी भी घटना किसी-किसी को होती है कि उसके कोई नहीं रह गया फिर भी उसकी बढ़िया सेवा हो गयी।

क्या यहां किसी का कुछ रहा है। किसी का कुछ नहीं रहा है। यहां जब किसी का कुछ नहीं रहा है तब हमारा कैसे रह जायेगा। सबका सब कुछ संसार से पूरा पुंछ गया। बड़ी-बड़ी विभूतियां आयीं और चली गयीं।

रतन का जतन करू, माड़ी का सिंगार।

आया कबीरा फिर गया, झूठा है हंकार॥

साहेब कहते हैं कि रतन का जतन करो। रतन है आत्मा। इसको जतन से रखो, सुरक्षित रखो। आपका धन आपका आत्मा है। चेतन आत्मा है, आपका स्वत्व है। उसको जतन से रखो। कहीं गड़बड़ी में उसको न गिरने दो। “माड़ी का सिंगार” सारा श्रृंगार माड़ी का है। यह शरीर, समाज, प्रतिष्ठा, पद, अवस्था जितना श्रृंगार है सब माड़ी का है।

एक नौजवान को देखो तो उसकी चाम पर जो माधुर्य है, लावण्य है वह कितने दिन का है। बहुत थोड़े ही दिनों में वह खो जाता है। नव वर-वधु थोड़े समय के लिए एक दूसरे के लिए आकर्षक रहते हैं। फिर एक दूसरे से वितृष्णा हो जाती है। संसार की यही कथा है। हम भावुक होकर मिली हुई वस्तुओं के प्रति राग और द्वेष में पड़ जाते हैं। जो अनुकूल लगता है उसके लिए मोह करते हैं और जो प्रतिकूल लगता है उसके लिए द्वेष करते हैं और इसी में पीड़ित होते हैं।

आप अनुकूलता में मोह न करें और प्रतिकूलता में द्वेष न करें। यह ठीक है कि आदमी अनुकूल में व्यवहार बरत सकता है प्रतिकूल में नहीं, लेकिन जो प्रतिकूल हो उसका भी अहित न सोचें। प्रतिकूल का सम्बन्ध न करे, प्रतिकूल का व्यवहार न ले, प्रतिकूल की चर्चा न करे, और स्मरण भी न करे तो अच्छा है लेकिन उसकी अहित कामना न रखे बल्कि हितकामना रखे।

जो अनुकूल है उसी में व्यवहार होगा लेकिन उसमें भी चिपके न, क्योंकि यह अनुकूल ही तो गले की फांसी है। जहां हम अनुकूल मानते हैं वहीं आसक्ति

बनती है और वहीं से पीड़ा शुरू होती है। सब अपने-अपने बनाये मकड़जाल में ही उलझते हैं। दूसरे के जाल में कोई नहीं उलझता है। अपने सुख के लिए यह जाल बनाया जाता है। परिवार का जाल, अपनों का जाल बनाया जाता है और वही पीड़ित करता है। अगर अनासक्त रहे तो पीड़ित नहीं होगा।

हमारे मन में जो भय होता है वह राग एवं मोह के कारण होता है और मोह “अजयागलस्तन” की तरह है। किसी-किसी बकरी के गले में स्तन की तरह एक मांसपिण्ड लटक जाता है। उसमें दूध तो नहीं होता है केवल जीवनभर का बोझा होता है। उसी को अजयागलस्तन कहा जाता है। इसी प्रकार जो आदमी मोह करता है वह मोह उसके लिए केवल बोझा होता है। उससे कोई फायदा नहीं होता है, लेकिन भावुक मन अनुकूलता में मोह जाता है और वहीं से पीड़ा शुरू होती है।

भावुक आदमी सोचता है कि जितनी अनुकूलताएं हैं सब बनी रहें लेकिन सब बनी नहीं रह सकती हैं क्योंकि सारा दृश्य कर्णों का जोड़ है। कार्य-पदार्थ में रासायनिक परिवर्तन निरन्तर चलता है। रासायनिक परिवर्तन एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने की प्रक्रिया है। जैसे दूध में रासायनिक परिवर्तन हुआ तो वह दही हो गया। दूध एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुंच गया। घर में रखी हुई वस्तुओं को आप कुछ काल बाद देखो तो आपको उसमें परिवर्तन दिखाई देगा। हर वस्तु में निरन्तर परिवर्तन होता है क्योंकि सब कर्णों का जोड़ है। उसको आप चाहते हैं कि स्थिर रहे लेकिन वह स्थिर कैसे रहेगा।

सबका मन परिवर्तनशील है। प्रेमियों का मन परिवर्तनशील है। छोटे बच्चे गोद में होते हैं, वे बड़े प्यारे और भोले-भाले होते हैं लेकिन थोड़ा ही बड़ा होते हैं कि चतुरता आ जाती है। फिर भी भोलापन होता है। वे प्यारे होते हैं लेकिन जब जवान हो जाते हैं तब उनका स्वार्थ बढ़ जाता है। विवाह हुआ तो एक लड़की से उसका सम्पर्क होने से उस लड़की के मन का बोझा भी उसके ऊपर आ जाता है। अपना और

पत्नी का अब दो के मन का बोझा लेकर उसको चलना पड़ता है। इसलिए उसके मन में अंतर आना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में आप यह चाहें कि आपका वह बच्चा जैसा भोला था वैसे ही आज भी भोला रहे तो यह कैसे सम्भव है।

हां, कुछ लड़के सज्जन होते हैं लेकिन उनमें भी फर्क आना पक्का है। कुछ लड़के निष्ठुर होते हैं। वे स्वार्थ में इतने काइयां होते हैं कि अपने मां-बाप को भी कुछ नहीं समझते हैं। वहां और विकट स्थिति आती है लेकिन अगर अपना मन विवेक में रखा जाये तो स्थिति कुछ खराब नहीं होती है। जो जैसा है वैसा है। बच्चा जैसा है वैसा है ऐसा विवेक रखकर सहकर निपटा लिया जाता है।

अगर आपके बच्चे हैं तो उनको पाल-पोष दो, वे पढ़े-लिखें और काम-धन्धा में लगे। उनसे अपने लिए कुछ चाहो न, बल्कि उनका हित चाहो तो ज्यादा गड़बड़ नहीं होंगे लेकिन आदमी तो भावुक है। वह सोचता है कि पुत्र को मैंने पैदा किया, बड़ा किया, सबकुछ मैंने इसके लिए किया-कराया फिर यह कैसे मेरी बात नहीं मानेगा। यह सोचकर बस पुत्र के ऊपर लदना शुरू कर देते हैं, लेकिन यह समझ लो कि जितना लदोगे उतना ही आपको उठाकर वह फेंकेगा और जितना निर्भार करोगे उतना ही आपके अनुकूल वह सोच सकता है।

भलाई इसी में है कि किसी पर लदो मत। पति, पत्नी, भाई, पिता, पुत्र, गुरु, शिष्य किसी पर लदो मत। लदने का मतलब है—अपने मन के अनुसार सारा कार्य करवाने की चेष्टा। जितना किसी पर लदोगे समझ लो उतना ही वह उठाकर आपको फेंकेगा और उतना आपको दुख पैदा होगा। निष्काम रहना सीखो। निष्काम रहना केवल साधु का ही काम नहीं है किंतु जो दुख न चाहे उसका ही काम है। और दुनिया में कौन ऐसा है जो दुख चाहता है? कोई दुख नहीं चाहता है। इसलिए अगर दुख नहीं चाहते हैं तो निष्काम रहें।

“निष्काम रहें”—यह कहना सरल है लेकिन इसका अभ्यास करना पड़ता है, विवेक करना पड़ता है

और देखना पड़ता है कि जिसमें हम सकामी हैं वह क्या है? किससे कितने दिन का साथ है? देखते-देखते घर का मालिक उठ जाता है। एक दिन वह घर भर का मालिक था और अब वह घर का मालिक नहीं रहा, चला गया। घर का सदस्य भी चला जाता है। यही रात-दिन हो रहा है और यही अनादिकाल से होता आ रहा है और अनन्तकाल तक होता रहेगा। यह कोई नयी बात थोड़े है लेकिन यह बात दिमाग में रहती नहीं है क्योंकि अभ्यास नहीं किया जाता है।

कौन नहीं जानता है कि एक दिन मर जाना है लेकिन चौबीस घंटे में इंसान कितने समय तक इसकी याद करता है। बुद्धि में तो बात आ जाती है कि आदमी को मर जाना होता है और हम भी मर जायेंगे। अपने विषय में यह स्मरण नहीं रखा जाता है। इसलिए जब घटना घटती है तब आदमी को तकलीफ होती है। अगर आदमी इसका अभ्यास रखे और बराबर चिंतन-मनन करे तब उसके मन में फर्क पड़े।

सबको समय निकालना चाहिए और इस बात पर मनन-चिंतन करना चाहिए। समय न निकालना और मनन-चिंतन न करना बहुत बड़ी दुर्बलता है। गृहस्थों की दुर्बलता तो है ही कितने साधुओं की भी दुर्बलता है। साधना के लिए घर-द्वार छोड़ दिये हैं लेकिन अकेले में बैठते नहीं हैं, चिंतन करते नहीं हैं, अध्ययन करते नहीं हैं, ध्यान करते नहीं हैं तब आध्यात्मिक कमाई कैसे होगी। आपने विवाह किया, बाल-बच्चे पैदा किया, घर बनवाया, धन जमा किया, बाल-बच्चों को सम्पन्न बनाया, बड़ा अच्छा किया लेकिन अपने लिए क्या किया? आत्मा का काम आपने कुछ नहीं किया।

एक महंत बराबर कोशिश करते थे कि मेरा कार्यक्रम उनको मिल जाये। वे बड़े महंत थे उनका पुराना आश्रम था। जब भारत में रेलवे लाईन नहीं थी तब जहां उनका आश्रम था वहीं से रेलवे लाईन निकली इसलिए उनकी जमीन बहुत मंहगी हो गयी।

उन्होंने कार्यक्रम जब पाया तो बहुत शौक से किया। अंतिम में उन्होंने मुझे अपने कमरे में बुलाया

और बैठाया। उनकी उम्र उस समय पंचानबे वर्ष की रही होगी। वहां उन्होंने मुझसे कहा कि साहेब, आस-पास की हमारी जमीन दब गयी थी। उसको मैंने मुकदमा लड़-लड़कर जीता, कब्जा किया और सुरक्षित किया तब इतना विस्तार हुआ। देर तक वे अपनी उपलब्धियों की चर्चा करते रहे।

अंत में मैंने कहा उनसे कि साहेब, क्या आपके मन में शांति है? तब वे कहे—“वह कहां है!” तब मैंने यह नहीं कहा कि तब आपने क्या पाया क्योंकि वे बुजुर्ग थे और मेरा ऐसा कहना अशिष्टता होती। मेरे कहने से अर्थ तो अपने आप वही हो गया।

जीवन में उन्होंने बड़ी उपलब्धि की, दबी जमीन को निकाल लिया, विस्तार किया, भवन बनाये लेकिन आत्मशांति नहीं पाये तो क्या किये। अगर वे कुछ नहीं करते, जमीन जैसे दबी थी वैसे दबी रहती और वे आत्मशांति पा गये होते तो बहुत बड़ा वैभव पा गये होते और उनके द्वारा बहुतों का हित हुआ होता। इसका मतलब यह नहीं कि व्यवहार में असावधान रहना चाहिए। मतलब है कि आत्मशांति की तरफ ध्यान देना और आत्मशांति को पाना जीवन का प्रमुख लक्ष्य है। इससे कभी चूकना नहीं चाहिए। तो केवल गृहस्थों में ही नहीं, विरक्तों में भी कितने हैं जो समय नहीं निकालते हैं। इसलिए सबको समय निकालना चाहिए और समय निकालकर अकेले में बैठना चाहिए, स्वाध्याय करना चाहिए, सद्ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए, चिंतन-मनन करना चाहिए और ध्यान करना चाहिए। सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करना एक विषय है और चिंतन करना दूसरा। चिंतन का अर्थ है वास्तविकता का विवेचन। हमारा शरीर नश्वर है। हमारे बाबा-दादा चले गये। हमारा यहां क्या रहेगा। पूर्वजों पर दृष्टि डालें तो कोई नहीं है। हम अपने बचपन की याद करें तो जिन बच्चों के साथ हम खेलते थे, आज उन्हें हम खोजने जायें तो उन बच्चों में कोई शायद मिल जाये। कई उनमें मर चुके होंगे और कइयों का पता नहीं है कि कहां चले गये।

संसार की वास्तविकता का विचार करना चिंतन है और जितनी वास्तविकता का आप विचार करेंगे उतना आपका मन निर्मोह होगा। चिंतन है वास्तविकता का विचार करना और ध्यान है मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना और फिर संकल्पों के त्याग का अभ्यास करना। जब परिपक्व अवस्था आती है तब कुछ नहीं करना पड़ता है। पूर्ण परिपक्व अवस्था में द्रष्टाभ्यास भी नहीं करना पड़ता है। तब जैसे साधक बैठता है बस शांत हो जाता है। यह दीर्घकाल के अभ्यास का फल है। यह अतिशयोक्ति नहीं है, कोई अंदजुआ बात नहीं है किन्तु वास्तविकता है। स्वाध्याय, चिंतन और ध्यान यह काम सबको करना चाहिए।

जवानी है, पद है, धन है, खेती-बाड़ी है, व्यापार-बट्टा है, सब गहमागहमी है। उसी में भूले-भूले और फूले-फूले बधिक के बकरे की तरह बदहवास हैं। अपने बचपन में बधिक के बकरे को मैंने देखा है।

मैंने देखा कि कसाई एक बकरे को घसीटकर काट दिया और उसका मांस बेचने लगा। जैसे मांस बिककर कम हुआ वैसे दूसरे बकरे को वह घसीटकर काट दिया और बाकी बकरे पत्तियां खाने में मगन थे। आदमी भी ऐसे ही बलि के बकरे की तरह भोगों के पत्ते खाकर मगन है। उसके जवानी है, धन है, परिवार है, पद है, पैसा है, और बड़ी गहमागहमी है लेकिन वह नहीं जानता है कि वह काल-बधिक का बकरा है। वह अभागा यह नहीं समझ पाता है कि काल उसको काटने वाला है। कब तक चलेगी जवानी, कब तक चलेगी गहमागहमी। सब ढीला होना है। बदहवासी में लोगों का समय खिसकता चला जाता है। जब कहो कि भाई, कुछ भजन करो तो कहते हैं कि समय नहीं मिलता। कितना झूठ है यह कहना कि समय नहीं मिलता। कैसे समय नहीं मिलता है। भजन को आप अपना काम समझते ही नहीं हैं तब समय कैसे मिले। अपना काम है भजन और भजन है अपने को सुरक्षित कर लेना।

अभी बाढ़ आ जाये और पता लगे कि अभनपुर के पास बाढ़ की दस फुट ऊंची लहर तीव्र गति से पूरब तरफ आ रही है तो हम और आप यहां से भागेंगे और

कोई मजबूत मकान पर चढ़ेंगे। पर्वत तो यहां है नहीं कि भागकर उसपर चले जायें। इसलिए अगर पहाड़ नहीं है तो मजबूत मकान पर चढ़ेंगे।

हम बाढ़ से ग्रस्त हैं और अपने लिए द्वीप नहीं बना रहे हैं। किसी ऊंचे टीले पर नहीं चढ़ रहे हैं तो बाढ़ में बह जाना है। रात में सोते हुए पब्लिक को बाढ़ बहा ले जाये ऐसे ही मौत भी बहा ले जायेगी और गृहस्थों के धन, साधुओं के धन, गृहस्थों के परिवार और साधुओं के समाज की जो कुछ गरमी है, सब छूट जायेगी। किसी का कुछ नहीं रहेगा। आपको अभी तो समय नहीं है लेकिन उस दिन पूरा समय मिलेगा जब आप लम्बे पड़ जायेंगे। अरे भाई! यह भयंकर भूल है जो समय नहीं निकालते हैं।

एक महंत जी थे। उनको बड़ी गरमाहट थी। उनके कई मठ हैं और बड़ी गहमागहमी है।

मैंने उनसे कहा कि कुछ ध्यान-चिंतन के लिए समय निकालते हैं तो वे कहे कि साहेब, समय ही मिलता नहीं है। टट्टी भी जाने का समय नहीं मिलता है। वे बताने लगे कि मैं टट्टी गया और जैसे बैठा कि चार जने आ गये और पूछ पड़े कि महंत जी कहां हैं।

हमारे लोगों ने बता दिया कि टट्टी गये हैं तो वे टट्टी की तरफ आ जाते हैं और टट्टीघर का फाटक खटखटाने लगते हैं तब मैं अन्दर लोटा खटखटाने लगता हूं। यह कहकर वे मुझसे अपनी महिमा गा रहे थे कि इतना मैं व्यस्त हूं कि टट्टीघर में हूं तब भी व्यस्त हूं और लोग छोड़ नहीं रहे हैं। यह सब भयंकर भूल और बदहवासी है। चाहे गृहस्थ हो चाहे विरक्त, सबको स्वाध्याय, चिंतन और ध्यान के लिए समय निकालना चाहिए। अगर नहीं निकालेंगे तो यहां का जो कुछ है कुछ काम देगा नहीं। दुनिया में अपने को जितना दुबाओगे उतनी ही तकलीफ पाओगे। इसलिए दुबाओ न किंतु अनासक्त होकर काम करो।

जो व्यवहार का काम है उसको करो। व्यापार करो, खेती करो। नौकरी का जो धन्धा है उसको करो। जहां जो हैं वहां का काम करें लेकिन उसमें अपने को दुबायें न। दुनिया के हानि-लाभ में हम अपने को

दुबाते हैं। हम दुनिया के हानि-लाभ में अपने को दुबायें न।

हानि-लाभ तो संसार का स्वभाव ही है। हानि होती है, लाभ होता है तो होने दो। उनमें अनासक्त रहो और एकान्त के लिए समय निकालकर मनन-चिंतन करो। स्वाध्याय, मनन-चिंतन और ध्यान रोज करते जाओगे तो आसक्ति कटती जायेगी और करना बन्द कर दोगे तो फिर जुड़ती जायेगी और यह भी समझ लो कि अगर साधना में ढील हो जाओगे तो फिर मन का मोह चित्त में फैल जायेगा और अगर साधना में दृढ़ रहोगे तो मन का मोह कटेगा।

साधना में शिथिलता, साधना में रुक जाना और साधना से लौट आना ये तीनों गलत हैं। शिथिल हो जाने का मतलब है कि जितनी साधना पहले करते थे उतना अब नहीं करते हैं। अब उतना नहीं पढ़ते हैं, उतना अध्ययन नहीं करते हैं, उतना ध्यान नहीं करते हैं, कम करते हैं। यही शिथिल हो जाना है।

साधना में रुक जाने का मतलब है कि बिलकुल बन्द कर दिये। न संत से मिलते हैं, न अध्ययन करते हैं, न चिंतन करते हैं और न ध्यान करते हैं। लौट आने का मतलब है कि विपरीत काम करने लग जाते हैं। राग-रंग का काम करते हैं, राग-द्वेष का काम करते हैं। गलत-गलत काम करने लगते हैं, यही लौट आना है। लौट आना बहुत गलत है। रुकना भी गलत है और शिथिल होना भी गलत है। इसलिए चलते रहो और आगे बढ़ो-आगे बढ़ो, रुको मत। अगर कोई निरन्तर साधना करे तो सफलता कैसे नहीं होगी। साधना में ढिलाई हो जाती है इसलिए सफलता नहीं मिलती है। गृहस्थों को भी साधना में समय निकालना चाहिए।

गृहस्थों में जो लोग पूजा का समय रखते हैं वे पूजा करते हैं। हमारे भक्तों में भी कितने हैं जो रोज ध्यान करते हैं, चिंतन करते हैं, अध्ययन करते हैं और उनको समय मिलता है। यह तो असावधानी की जाती है और कह दिया जाता है कि समय नहीं मिलता है। आत्मा का काम किया नहीं जाता है जीवनभर बेगारी ही बेगारी की जाती है। परिवार-पोषण और शरीर-पोषण

बेगारी है। आत्मा का काम करना असली काम है। बेगारी में ही जिंदगी बीतती चली जाती है। यह अपना बनाया कितना बड़ा दुर्भाग्य है।

मन की दुर्बलता से मनुष्य के मन में भय और दुख बने रहते हैं, हरदम हानि की सम्भावना बनी रहती है। हरदम यह आभास होता है कि हानि हो गयी, घाटा हो गया और अपमान हो गया लेकिन किसका अपमान हो गया। नाम-रूप से अपने को अलग करो। एकान्त चिंतन करो तब अपने को नाम-रूप से अलग कर सकोगे।

यह जो शरीर है, यह जो रूप है, मेरा नहीं है। यह तो मिट्टी का लौंदा है। मेरे शरीर का शिशुपन इस ढंग से नहीं था, बालपन ऐसा नहीं था, कौमार्य ऐसा नहीं था और जवानी भी ऐसी नहीं थी। आज की अवस्था भी बिलकुल अलग है। अगर शरीर रहा तो कुछ दिन में आज का यह रूप भी नहीं रहेगा, गल जायेगा और बिलकुल अलग ढंग से दिखेगा।

अगर कोई अपने शरीर पर चिंतन करता है तो जवानी में ही वह बुढ़ापा को देख लेता है और उसके मन का मोह कटता है। नाम क्या है एक कल्पना है। काम चलाने के लिए एक नाम रख लिया गया है लेकिन नाम मैं नहीं हूँ और रूप भी मैं नहीं हूँ। चिंतन में नाम और रूप से अपने आप को अलग किया जाता है। चिंतन जितना बढ़ता है नाम-रूप की आसक्ति उतनी क्षीण होती है। नाम-रूप की आसक्ति जब क्षीण होती है तब क्लेश मिटता है।

एकबार स्वामी रामतीर्थ हंसते हुए अपने शिष्यों में आये। शिष्यों ने पूछा कि गुरुजी! आज क्या मिल गया आपको कि आप इतना हंस रहे हैं? तब वे कहे कि आज “राम” को खूब गाली मिली इसलिए मैं खूब खुश हुआ। कोई आदमी उनको गाली दिया था तो अपने को वे अन्य पुरुष में कहते थे। रामतीर्थ का संक्षिप्त नाम राम था। जब उनको कोई तकलीफ हो, अपमान हो, कोई आदमी उनको गाली दे तो कहें कि राम को गाली मिली और मैं खूब खुश हुआ। यह लक्षण है अपने नाम-रूप से अलग होने का। जब ऐसा सोचोगे, चिंतन

करोगे तब आसक्ति कटेगी। आप तो अपने नाम-रूप में चिपके हो। आप तो माने बैठे हो कि यह शरीर “मैं हूँ।” आप माने बैठे हैं कि कुछ अक्षरों का इसका जो कल्पित नाम है वही मैं हूँ और वह मेरा है। इसीलिए उसको लेकर थोड़ी-थोड़ी बात में आपके मन में हर्ष-शोक होता रहता है। आप मानते हैं कि ये बच्चे मेरे हैं। यह धन-दौलत मेरी है लेकिन यह सब झूठ है। कौन किसका है। अरे, एक तमाशा है, एक दिखावा है। घर का मालिक घर बनाता है और वह घर का मालिक होता है। चार दिन के बाद वह मालिक नहीं रह जाता है।

आप लोग भी जानते हैं और मैं तो जानता ही हूँ क्योंकि मैं घूमता रहता हूँ। झोपड़ियों से लेकर महलों तक मैं मेरा जाना होता है। जाता हूँ तो देखता हूँ लोग जमीन का प्लॉट लिए, उसपर विशाल भवन बनवाये और उनको अपने मकान को लेकर बड़ी गर्मी थी। लेकिन उसी मकान में आज वे दो नम्बर के आदमी हैं और एक किनारे बैठे हैं। अब मालिक उनके नाती-पोते हैं। अब वे किसी को एक जबान नहीं कह सकते हैं। मलिकई का कैसा चक्कर है! कैसी भूलभुलैया है। जिसने बनाया वह दूसरे नम्बर में हो गया और जो नहीं बनाया वह मालिक बनकर बैठ गया। इतना ही नहीं वह जो कुछ कह दे बूढ़ा चुपचाप उसको सुन ले नहीं तो उसका कुशल नहीं है। ऐसा भी समय आता है “जीत की हार अभी बाकी है, धार अभी बाकी है, पार अभी बाकी है”—यह समझ लो। जवानी में जीत होती है लेकिन बुढ़ापा में हार होती है।

विचार यह करना है कि बुढ़ापा जीत में कैसे बदले। निष्काम होने से बुढ़ापा जीत में बदल जायेगी। सकामी रहोगे तो हार ही हार है। बच्चे को काम-धाम में लगा दो, बच्चा अगर जवान है, समझदार है तो काम-धाम में लगा दो और अगर बच्चे नहीं हैं तो मामला ही खत्म है। तब आप स्वतंत्र हैं। अगर बच्चे हैं और समझदार हैं तो उनको कामधाम में लगा दो और अपना बोरिया-बिस्तर समेटो और अहंता-ममता न बनाओ। जहां-जहां हमारी अहंता-ममता होती है

वहां-वहां से हमें हटना है। यह चिंतन का विषय है। जो पहले से ही चिंतन करके अपने मन में इस विचार को दृढ़ कर लेता है, उसको समय आने पर कोई तकलीफ नहीं होती है। वह समझता है कि पहले से ही मैं इसको जानता था। पहले से वह ऐसा व्यवहार भी करता है। वह उसमें अमर्ष नहीं करता है, शिकायत नहीं करता है। वह बच्चों की तारीफ करता है। जो उसके नाती-पोते होते हैं उनको वह धन्यवाद देता है।

अगर यह कहो कि मैं तो दो कौड़ी का हो गया तो यह आपकी हार है और आप दुखी होंगे और बच्चों के मन में भी क्लेश होगा कि बाबा दुखी हैं। आपका व्यवहार भी कटु हो जायेगा लेकिन अगर आप सबकुछ उनका समझते हैं और उनको आगे कर देते हैं और आप प्रसन्न हैं तो आप आनन्दित रहेंगे और उनका मन भी हल्का रहेगा, उनके स्वभाव में परिवर्तन आयेगा, नम्रता आयेगी, आपके प्रति कृतज्ञता आयेगी। सुख और दुख दोनों अपने ऊपर हैं। जितना चिपको उतना ही पीड़ित होओ और जितनी चिपकाहट छोड़ो उतना सुखी होओ। यह गणित की तरह बिलकुल पक्की बात है।

गणित पूरी दुनिया में एक समान मान्य है। गणित में दो विचार नहीं है। दो-दो चार हर भाषा, हर देश और हर काल के सब व्यक्ति समान रूप से मानते हैं। ऐसे ही साधना का भी जो मुख्य विषय है वह गणित की तरह निर्विवाद है। बात है कि जितना मोह करो उतना ही चांटे खाओ और जितना मोह से रहित रहो उतना सुखी होओ। यह समझ लो कि इस दुनिया में अगर आपको कुछ मिलना है तो केवल चांटे ही मिलना है। आप क्या सुख चाहते हो! जिसको बनाकर रखे हो उससे सुख चाहते हो। अरे, यह समझो कि सुख है क्या। सुख नाम की चीज कुछ है ही नहीं।

धान-गेहूं है, चावल-दाल है, सोना-पाथर है, हीरे-मोती हैं, माटी-गोबर हैं लेकिन सुख कहीं नहीं है। सुख एक भ्रम है। जितना सुख चाहोगे उतना दुख पाओगे। संसार का जितना श्रृंगार करोगे उतना उसमें चांटे पड़ेंगे और उतना दुख पाओगे। सुखी रहना चाहो

तो अपने को एकदम अनासक्त बनाओ। सुखी रहने का मतलब है मन का विश्राम पा जाना, मन में शांति, मन में तृप्ति, मन में आनन्द हो जाना।

दुनिया के भोगों को चाहकर आनन्दित नहीं होंगे किंतु दुनिया के भोगों के प्रति अनिच्छित होकर सुखी और शांत हो सकते हो। जितना चाहोगे उतना ही पीड़ा पाओगे। जितना न चाहोगे उतना सुखी रहोगे। जो अपनी श्रेणी है उसमें रहकर काम करो और अपनी श्रेणी में काम करके जितना उपलब्ध हो उतने में संतुष्ट रहो। अपने गुजर-बसर के लिए कम से कम में खर्च करने की आदत डालो। अपने को विलासी न बनाओ।

कितने पिता हैं जो अपना अलग भोजन खाते हैं। बचपन से ही कई ऐसे लोगों को मैं जानता हूँ कि उनके लिए महीन चावल का भात बनता था। उनके लिए घी-दूध का स्पेशल प्रबन्ध रहता था। यह बहुत गलत है। एक साथ भोजन हो, जो सब खायें वही पिता खायें। समाज में गुरु को भी वही खाना चाहिए जो समाज के लोग खाते हैं। अपना स्पेशल कुछ भी मत रखो। कहीं भी कोई हो, बड़ा पद है, बड़ी उम्र है तो भी कुछ स्पेशल मत गांठो किंतु सरल रहो। निष्काम रहो और अपने जीवन गुजर की वस्तुओं को संक्षिप्त रखो। कम से कम वस्तुओं में गुजर करने की चेष्टा करो। सम्मान पाने की चेष्टा छोड़ो। लड़के और शिष्य बढ़ाई कर दें यह बिलकुल न चाहो। हटकर रहो और उनको धन्यवाद दो। जो बन सके अपने से सेवा कर दो और उनसे कुछ न चाहो। देखो, आनन्द-आनन्द रहेगा। पत्नी से भी कामनावाला न रहो। पत्नी भी पति से कामनावाली न रहे। निष्काम होकर रहे तो देखोगे कि वे सुखी रहेंगे।

लोग एक दूसरे पर जितना लदते हैं उतना पीड़ा भोगते हैं। जितना दूसरे पर लदोगे, जितना दूसरे से चाहोगे उतना क्लेश होगा, उतना राग-द्वेष होगा और उतना ही पीड़ित रहोगे और जितना निष्काम रहोगे उतना सुखी रहोगे। यह बिलकुल व्यावहारिक पक्ष है। व्यवहार करके देखो तो अपने आप जीवन में अंतर पड़ेगा। जमाना बहुत बदल गया है। पहले का जमाना

दूसरा था। हमारा भारतवर्ष कृषि प्रधान देश था और व्यापार-बट्टा इतना नहीं था और फैक्टरियां भी इतनी नहीं थीं। मुहकमें इतने नहीं थे और नौकरियां इतनी नहीं थीं। नौकरियों की जगह आजकल बहुत बढ़ गयी है और परिवार और समाज दोनों टुटे हैं। परिवार तो काफी टुटा है। पहले परिवार का मालिक जितना कमाता था उसको सब दर-फर कर खा लेते थे और सब एक साथ रहते थे। बूढ़ा जो कह देता था। सब उसको मानते थे। बूढ़े का आदर रहता था सब उसकी अदब करते थे।

पहले ज्यादातर खेती-बारी होती थी और गांव का निवास होता था। अब सब बदल गया है। अब गांववाले भी शहर की तरफ भाग रहे हैं। आज पढ़ाई-लिखाई बढ़ गयी है। घर है गांव में और लड़का व्यापार करता है शहर में। इतने में बहुत अंतर हो गया। लड़के पढ़-लिख लिए अब वे किसी शहर में नौकरी करते हैं और इतना ही नहीं, भारत के दूसरे कोने में करते हैं और आज तो पूरी दुनिया मानो एक जगह इकट्ठी हो गयी है। बहुत-से लोग विदेश भी जा रहे हैं।

एक डाक्टर एक बड़े नगर का नाम लेकर बताते थे कि साहेब, वहां पैंतालीस लाख में मैंने लड़के के लिए मकान बनाया। एक ही लड़का है और पढ़ा-लिखा है, अब वह अमेरिका चला गया। वह पहले ही बता देता तो मैं वह पैंतालीस लाख न खर्च करता। उसकी मां रात-दिन रो रही है। मैं अब क्या करूं। मैंने उसको समझाया कि तुम लोग रोओ मत। आप सोचिये, जिनके लड़के नहीं हैं वे दुखी हैं और जिनके हैं वे भी दुखी हैं।

श्रीराम जिन्हें आप भगवान कहते हैं उनकी मां कौशल्या भी दुखी रही हैं। कौशल्या साज सज रही थीं कि अभी राम की राजगद्दी होगी। जब राम दशरथ के पास से लौटकर आये तब बताये कि मां, मेरे लिए पिता जी ने चौदह वर्ष का वनवास दिया है और भरत को राज्य मिला है। यह सुनते ही कौशल्या व्याकुल हो

बेहोश हो गयीं। जब उनको पानी छिड़का गया और हवा दी गयी तब वे उठीं।

कौशल्या विलाप करने लगीं और उन्होंने कहा कि जीवन में मुझे सुख नहीं मिला। मैं सोचती थी कि अब लड़का जवान हुआ है, अब सुख मिलेगा लेकिन अब यह चौदह वर्ष के लिए वन को जा रहा है। लड़का न होता तो एक ही दुख था कि लड़का नहीं है और लड़का होकर तो भयंकर दुख है। यह माता कौशल्या का वचन है।

राम से कौशल्या इतनी दुखी थीं और आप चाहते हो कि राम का नाम लेने से दुख दूर हो जायेगा जबकि राम अपनी माता कौशल्या का दुख दूर नहीं कर पाये, अपने पिता का दुख नहीं दूर कर पाये, अपनी पत्नी का दुख दूर नहीं कर पाये और अयोध्यावासियों का दुख दूर नहीं कर पाये। फिर वे आपका दुख कैसे दूर कर पायेंगे? कौन किसका दुख दूर कर पायेगा।

रामायण की घटना है। सीता जी लंका में अशोक वनिका में हैं। हनुमान जी वहां छिपकर बिलकुल उनके निकट पहुंच गये हैं। सीता जी विलाप करती हुई कहती हैं—

धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसम्मतः ।

जितात्मानो महाभागो येषां न स्तः प्रियाप्रिये ॥

सीता जी कहती हैं कि वे महात्मा लोग धन्य हैं जो जितेन्द्रिय हैं, मननशील हैं, सत्य अर्थात् आत्मा में स्थित हैं, उनके न तो कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय। इसलिए उनको कोई दुख नहीं है, हम ही दुखी हैं। यह सीताजी का विलाप है। इस धरती और आकाश के बीच में अपना मन प्राणी और पदार्थों में मोहग्रस्त करके कोई सुख पाना चाहे तो वह महा भोला है। वह तो मानो बर्फ को भूनकर खाना चाहता है।

बच्चे आज देश-विदेश जा रहे हैं इससे मां-बाप दुखी हैं। अमेरिका हो चाहे भारत का ही कोई कोना हो लड़के तो कमायेंगे-खायेंगे और अपनी जगह पर रहेंगे लेकिन आपको क्या मिलेगा। बस इतना ही समझो कि “हाथी घूमे गांव-गांव, जेकर हाथी तेकर नांव” हाथी गांव-गांव घूमता है और वह हाथी जिसका रहता है

उसका नाम होता है कि फलाने भइया का हाथी है। बस इतने में ही संतोष रखो। आपका बच्चा है कहीं कमा-खा रहा है, बस ठीक है। अब उससे क्या चाहते हो।

दूसरा संकट है कि लड़का विवाह करके बाल-बच्चों के सहित आपके साथ रहे तो सास-बहू में झगड़ा होता रहेगा। इलाहाबाद में एक सज्जन मुझसे मिलने आये। वे बहुत समझदार हैं। वे अपने घर की बात बताने लगे कि साहेब, दो लड़के हैं, दोनों की बहूएं हैं। उनके बच्चे हैं। अब मलकिन परेशान हैं। वे देखती हैं कि ये बहूएं अपने-अपने स्वार्थ में हैं, ये लड़के अपने-अपने स्वार्थ में हैं। इसलिए वे बहुत पीड़ित हैं और बहुत ऊबियाती हैं।

उन्होंने कहा कि मैंने एक दिन कहा कि यह बताओ कि तुमने बच्चा क्यों पैदा किया था। जब बच्चा पैदा की थी तब यह ख्याल तुम्हें था कि नहीं कि ये बच्चे बड़े होंगे, जवान होंगे, इनकी शादी करेंगे और इनके बहूएं आर्येगीं और नाती-पोते होंगे इसको क्या सोची नहीं थी। और आज वही सब हो रहा है तो दुखी हो रही हो। अब यह सब हो रहा है तब इसको झेलो, भोगो। तो घर में बच्चे रहें तो उनसे लड़ो और दुखी होओ और अगर वे बाहर चले गये तब रोओ और दुखी होओ कि वे पास में नहीं हैं। ऐसे ही यह मिलन-बिछुड़न का तमाशा है। सुख न मिलन में है और न वियोग में। कमबख्त दिल हर समय पीड़ित रहता है।

विवेकवान को चाहिए कि जो साथ में हैं उनसे समता का बरताव करें। उनसे कुछ कामना न रखें, निष्काम रहें। कोई पूछे कि लड़के और बहू कैसे हैं तो कहें कि अच्छे हैं, आज्ञाकारी हैं, बात मानते हैं। न मानते हों तो भी ऐसा कहना चाहिए कि बात मानते हैं। यह कहना कोई बुरा नहीं है। यह झूठ बोलना कोई पाप नहीं है। ऐसा कहने से हो सकता है कि वे कुछ आज्ञा मानें, कुछ प्रेम करें। और अब आप ऐसे हैं कि लड़के-बहू कुछ बात भी मानते हैं तो कहते हैं कि बात नहीं मानते हैं, पास में नहीं बैठते हैं। जब आप ऐसा कहेंगे तो वे पास में बैठना भी बन्द कर देंगे।

बच्चे कलयुगी होते हैं ऐसा लोग प्रायः कहते हैं लेकिन ये बूढ़े क्या कलयुगी नहीं होते हैं? बूढ़े याद करें कि वे भी जब जवान थे तब कलयुगी थे कि नहीं। वे अपनी पत्नी की बात बहुत मानते थे। अब आपका लड़का भी अपनी पत्नी की बात मानता है तो बुरा क्या करता है। बाहर से एक लड़की बहू बनकर आयी है तो बहू के लिए पति ही तो आधार है। इसलिए उसकी बात वह न माने तो दूसरा कौन मानेगा। गृहस्थी बसाना अलग है और उसको निभाना अलग। और गृहस्थी की क्या, विरक्ति की ही बात ले लीजिए, हर जगह वही बात है।

हमारे पास बच्चे आते हैं तो बहुत उत्साहित होकर आते हैं। जिनको ढीला देखता हूं तो कहता हूं कि बेटा! तुम चले जाओ, तुम वैराग्य नहीं कर पाओगे लेकिन वे कहते हैं कि नहीं साहेब! कफन बांधकर आया हूं। अब नहीं लौट सकता लेकिन कुछ दिन में वे स्वयं चुपके से रात में उठकर चले जाते हैं।

कितने कई वर्षों तक रहते हैं फिर ढीले हो जाते हैं। उनको भी समझाता हूं कि तुम अब चले जाओ। जाते हैं लोग और समय-समय से मिलते भी हैं। कुछ बिना बताये चले जाते हैं लेकिन जब मिलते हैं तब उनसे प्यार करता हूं। उनको बुरा नहीं कहता हूं लेकिन अब उनकी जिम्मेदारी मैं नहीं ले सकता क्योंकि अब वे स्वतंत्र हैं। अगर मैं उनकी जिम्मेदारी लूंगा तो फिर मामला गड़बड़ होगा क्योंकि उन पर मैं कण्ट्रोल तो कर नहीं सकता। इसलिए उनकी जिम्मेदारी मैं नहीं लेता लेकिन जहां वे मिलते हैं तो उनके लिए पहले जैसे प्यार था वैसे तब भी रहता है।

कभी भी मैं उनकी बुराई नहीं करता। जो लोग पास में रहते हैं वे सब ठीक-ठाक चलते हैं। मैं चार महीने के बाद जब इलाहाबाद जाता हूं तो दो साधु-ब्रह्मचारियों में आपस में झगड़ा हुआ है, विवाद हुआ है, ऐसा नहीं सुनता हूं। इतना बढ़िया रहता है और यही मैं उन लोगों से कहता भी हूं कि तुम लोग साधना के, साधुत्व के स्तर को बनाये रखो। शुद्ध ब्रह्मचर्य,

निष्काम दशा और अपने विचार से रहो। अब जीवन्मुक्ति की ऊंचाई पर तो जो जितना चढ़े उसको धन्यवाद है क्योंकि वही तो लक्ष्य है। लेकिन साधुत्व का न्यूनतम स्तर बना रहे और दूसरी बात कि आपस में प्रेम बना रहे।

जो लड़के चले जाते हैं उनके लिए भी मेरा स्नेह वैसे ही रहता है। जब वे मिलते हैं तब मैं उनसे वैसे ही स्नेह से बातें करता हूँ लेकिन उनका मैं सम्बन्ध नहीं रख सकता हूँ क्योंकि उनको निपटा नहीं सकता हूँ। किसी के लिए तनाव नहीं है।

कहने की बात है कि सुखी होना-दुखी होना दोनों अपने ऊपर निर्भर है। हम उनसे अगर कुछ चाहें तो गलत होगा। हम चाहें कि जो चले गये हैं वे हमारे पास रहें, कैसे हमारे पास से चले गये। वे चले गये तो हम उनकी बुराई करने के लिए उनके पीछे पड़ गये और मिले तो मैं कहूँ कि अब तुम्हारी बंदगी बन्द है और जाओ, हटो यहां से, तो यह सब तकरार है और यह तकरार कितना गलत है!

उनसे मैं कुछ चाहता ही नहीं हूँ। वे आये थे तभी मैंने कहा था कि भैया चले जाओ। रह गये तो रह गये। चले गये तो धन्यवाद और रह जायें तो भी धन्यवाद। इससे मैं सुखी रहता हूँ। ऐसे आप लोग भी कीजिए।

गृहस्थी या विरक्ति कहीं भी हो बात वही है। मनुष्य वही है, चीजें वही हैं और व्यवहार भी वही है। गृहस्थी और विरक्ति में अंतर बहुत है। यहां विरक्ति में अगर कोई गड़बड़ करने लगे या स्वभाव का ठीक नहीं है तो हम उसको हटा सकते हैं लेकिन आपका लड़का है वह गड़बड़ है तो उसको आप हटा नहीं सकते। वह आपके साथ ही रहेगा लेकिन वहां भी जब अति हो जाती है तब बांटकर अलग कर दिया जाता है। फिर भी वहां सरलता नहीं है, यहां सरलता है। कोई गड़बड़ है और बात नहीं मानता है तो हटा दिया जाता है। और वैसे जो गड़बड़ होते हैं वे अपने आप भाग जाते हैं।

गृहस्थी में हैं तो लड़के हैं। अब वे दस-पन्द्रह वर्ष के हुए तभी से मियां-बीबी सोचने लगते हैं कि इनका

विवाह करना है। उनके बाल-बच्चे पैदा होंगे फिर उनके लिए प्रबन्ध करना है। इतने में अलगिया शुरू हो जाती है। बड़े भाई का अलग, छोटे भाई का अलग शुरू हो जाता है। कहने का मतलब है कि गृहस्थी में और विरक्ति में फर्क बहुत है। परन्तु गृहस्थी और विरक्ति दोनों जगह व्यक्ति वही है और नुस्खे भी वही हैं। नुस्खा यही है कि अगर निष्काम रहोगे, निर्मोह रहोगे, अनासक्त रहोगे तो हर जगह निर्बन्ध रहोगे। अगर अनासक्त नहीं रहोगे, निर्मोह नहीं रहोगे तो हर जगह चांटे खाओगे।

एक साधु ने ही बताया था कि महाराज, जब मैं अपने गुरु के पास से चला आया तो मेरे गुरुजी ने मुझे पत्र लिखा तो पत्र पर उनके आसू की बूंदें पड़ी थीं। वह पत्र रखा है उसको आपको मैं दिखा सकता हूँ। यानी उनके गुरु अपने शिष्य के प्रति इतने मोही थे कि पत्र लिखे कि बेटा आ जाओ। पत्र लिखने में आंसू गिरा दिये। अब यह क्या गुरुत्व है, क्या साधुत्व है, साधुता का यह क्या आनन्द है। इसलिए कहीं भी कोई मोह करेगा तो दुख पायेगा और अगर मोह नहीं करेगा तो सुखी रहेगा।

आदमी जो भयभीत है और दुखी है वह अपने अज्ञान और मोह के कारण दुखी है। मोह क्यों बलवान है—क्योंकि समय निकालकर चिंतन, स्वाध्याय और साधना नहीं करता है। आप लोग समय निकालकर यहां आये हैं तो कुछ सुन रहे हैं, समझ रहे हैं और लाभ ले रहे हैं। न आप आते तो कैसे सुनते। रोज-रोज अध्ययन, ध्यान, चिंतन के लिए जो समय नहीं निकालेगा उसके मन की काई नहीं कटेगी और उसको जीवनभर दुख भोगना है। जन्म-जन्मान्तर उसे तकलीफ होगी। इसलिए समय निकालो और स्वाध्याय करो, ध्यान करो, चिंतन करो और मन को अनासक्त बनाओ।

अनासक्ति जितनी बढ़ती जायेगी दुख उतना खत्म होता जायेगा और इसी जीवन में जो पूर्ण अनासक्त हो जाता है वही जीवन्मुक्त है। वही परमानन्द की प्राप्ति है। इसलिए इस दिशा में सबको चलना चाहिए। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ। □